गुरुमत सार

पहला भाग

राधास्वामी सत्संग ब्यास

गुरुमत सार

भाग १

परम सन्त श्री हुजूर महाराज
बाबा सावनसिंह जी

राधास्वामी सत्संग ब्यास
(पन्जाब)

प्रकाशक :
एस. एल. सोंधी
सैक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास

प्रथम संस्करण	५०००	:	१९६४
द्वितीय संस्करण	३३००	:	१९७०
तृतीय संस्करण	३३००	:	१९७६
चतुर्थ संस्करण	५५००	:	१९७८
पंचम संस्करण	५१००	:	१९८०
षष्टम संस्करण	११०००	:	१९८३

मुद्रक :
जसपाल प्रिंटिंग प्रैस, कटड़ा कन्हैयाँ, अमृतसर

भूमिका

श्री हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी ने अपनी ४५ साल की निस्वार्थ सेवा काल में परमार्थी जिज्ञासुओं की खोज और ज्ञान के लिए अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें दो भागों में लिखा गया 'गुरुमत सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ बहुत महत्वपूर्ण है। इसके प्रत्येक भाग के करीब एक-एक हज़ार पृष्ठ हैं जिनमें परमार्थ के लगभग हरएक विषय पर प्रमाण सहित लेख हैं।

प्रत्येक जिज्ञासु के पास शायद इतना समय न हो कि दो हज़ार पृष्ठों का अध्ययन कर सके, इसलिए इन दो भागों की भूमिकाओं को पृथक्-पृथक् पुस्तकों के रूप में अध्यात्मक-प्रेमी जनता के सम्मुख रखा जा रहा है।

इनमें संक्षिप्त रूप से महाराज जी ने संत-मत के मोटें-मोटे सिद्धान्तों पर विचार किया है। आशा है जिज्ञासु पाठकों को इन पुस्तकों से, जिनका नाम 'गुरुमत सार' भाग पहला और दूसरा रखा गया है, लाभ पहुँचेगा। यदि प्रेमी-पाठक इन विषयों पर पूर्ण-ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो वे बड़े ग्रन्थ 'गुरुमत सिद्धान्त' के दोनों भागों का अध्ययन करके लाभ उठा सकते हैं।

सैक्रेटरी

राधास्वामी सत्संग ब्यास,
पो. औ. डेरा बाबा जैमलसिंह
(ज़िला अमृतसर)
Pin. 143204

विषयानुक्रमणिका

मनुष्य पहले या धर्म ?

मनुष्य सबसे पुराना है, धर्म सब बाद में बने। धर्म मनुष्य के लिये हैं, वे उसकी आत्मिक उन्नति के लिये बनाये गये हैं, मनुष्य धर्म के लिये नहीं। मनुष्य का ध्येय तो परम आनन्द तथा मालिक की प्राप्ति था। आजकल साँसारिक पदार्थों, बुद्धि की चतुराइयों, सदाचार के नियमों तथा धार्मिक सिद्धान्तों के होते हुए भी मनुष्य, खुश नज़र नहीं आता। लाखों व्यक्ति अपने आप से अथवा दुनिया की दौड़-धूप से सन्तुष्ट नहीं हैं। उनमें से प्रत्येक स्वयं को एक अथवा दूसरे धर्म का अनुयायी कहता है, कोई हिन्दू, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई बौद्ध, कोई जैन आदि किन्तु उन्हें जीवित रहने में कोई रस नहीं। वास्तव में सच्चा धर्म अथवा मज़हब सर्वव्यापी है, सारे संसार का एक ही है। हाँ, प्रत्येक धर्म का बाहरी स्वरूप अन्य धर्मों के स्वरूपों से भिन्न प्रतीत होता है। पर यदि प्रत्येक धर्म की तह में पहुँचा जाये तो एक ही मार्ग तथा एक ही नियम सब धर्मों की बुनियाद में काम करता नज़र आता है। वह सारे संसार के लिये एक ही है। मनुष्य होने के नाते हम सब एक ही मानव जाति के हैं तथा हमारा अन्दरूनी अथवा आन्तरिक आधार भी एक ही है। विचार करने से पता चलता है कि

मनुष्य मनुष्य सब एक ही हैं

मालिक ने मनुष्य पैदा किए। वे सिक्ख, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध आदि बाद में बने। आज से पाँच सौ वर्ष पहले सिक्ख नहीं थे, तेरह सौ वर्ष पूर्व मुसलमान कोई नहीं थे, दो हज़ार वर्ष पहले ईसाईयों का नाम-निशान भी नहीं था और पाँच हज़ार साल पूर्व बौद्धों का कहीं पता न था। इसी प्रकार आर्य तथा हिन्दुओं के पहले भी कई कौमें आईं और चली गईं। मानव-मानव, क्या पूर्व के और क्या पश्चिम के, सब एक ही रहे तथा एक ही हैं। कोई ऊँच अथवा नीच जाति का नहीं। सब के अन्दर आत्मा है जो मालिक का अंश है।

"कहु क़बीर इहु राम की अंसु ॥" (गौड कबीर, ८७१-१०)

सच्चा धर्म सबके साथ प्रेम करना तथा ईश्वर को याद करना है

सच्चा धर्म क्या है ? यह प्रश्न अनादि काल से मनुष्य के अन्दर उठ रहा

है। इस विषय में ग्रन्थों पर ग्रन्थ लिखे गये हैं। कोई इसका उत्तर कुछ देता है तो कोई कुछ। किन्तु, एक प्रश्न का ठीक उत्तर तो केवल एक ही हो सकता है। इस पर विचार करने से पूर्व हमें यह देखना चाहिये कि धर्म अथवा मज़हब का ध्येय क्या है? सबका उत्तर एक ही है, 'परम सुख तथा मालिक की प्राप्ति'। तीरंदाज़ अनेक हैं, पर निशाना एक ही है। वाहिगुरु से प्रेम करते हुये हमें उसकी रची हुई सृष्टि के साथ भी प्रेम करना है। सब महात्माओं के जीवन में एक ही सिद्धान्त काम करता नज़र आता हैं, वे सब जीवों के साथ, क्या आस्तिक तथा क्या नास्तिक, प्रेम करते हैं। वे जानते हैं कि सब एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं, अतएव सब एक ही शरीर के अंग हैं। यदि एक अंग को दुःख होता है तो अन्य अंग अनायास ही बेचैन रहते हैं।

"बनी आदम आज़ाए यक दीगर अन्द
के दर आफ़्रिनिश ज़ यक जोहर अन्द
चो उज़्वे बदर्द आवर्द रोज़गार
दिगर उज़्वहा नमानद करार" (शेख सादी)

शेख़ फ़रीद साहिब फ़र्माते हैं कि यदि तुझे प्रीतम से मिलने की चाह है तो किसी का हृदय न दुखा।

"जे तउ पिरीआ दी सिक हिआऊ न ठाहे कहीदा॥"
(सलोक फरीद, १३८४-१९)

गुरु गोबिन्दसिंह जी महाराज फ़र्माते हैं कि वह मालिक सब के अन्दर है, प्रत्येक हृदय उसके रहने का स्थान है। यदि कोई ख़िल्लत (सृष्टि) को दुःख देता है, तो ख़ालिक (सृष्टा) उसको सज़ा देता है।

"ख़लक ख़ालक की जान कर, ख़लक दुखावें नाहिं॥
ख़लक दुखे नन्द लाल जी, ख़ालक कोपे ताहिं॥"

सब पवित्र आत्माओं तथा भक्तों का सदैव एक ही मज़हब होता है, 'मालिक की भक्ति तथा उसकी ख़िल्कत से प्यार।' मनुष्य तब ही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है जब कि उसमें मानवता के गुण हों, जब कि मनुष्य मनुष्य को भाई समझे, उसका दुःख-दर्द बंटाये, हृदय में करुणा रखे, मालिक तथा उनकी सृष्टि के प्रति अटूट प्रेम रखे। यदि इनके स्थान पर ईर्ष्या, क्रूरता, हरामख़ोरी, चुगलख़ोरी, दुश्मनी, लालच, तृष्णा, पाखण्ड, वैर, पक्षपात, हठधर्मी आदि हमारे अन्दर बसते हों तो हमारे हृदय का शीशा स्वच्छ किस प्रकार हो सकता है? इनके होने से मनुष्य-जीवन की सारी खुशी तथा

मिठास दूर हो जाती है। इस कुदरती मैल के होते हुए हमारे दिल के शीशे में मालिक की झलक कहाँ!

रूह मालिक का अंश है। इसका दर्जा सृष्टि में सबसे ऊँचा है। 'मालिक तथा उसकी पैदाइश के साथ प्यार' का गुण जितना ही बढ़ता है, उतना ही मनुष्य मालिक के समीप होता जाता है। सब एक ही नूर से उपजे हैं, तथा उसी एक का नूर सबके अन्दर चमक रहा है। फिर इनमें कौन बुरा है तो कौन भला? जुज़ और कुल (अंश और अंशी) में कोई भेद नहीं हो सकता, सब उसी एक जौहर से पैदा हुए हैं। बाहरी रंग-रंग की शक्लें, पोशाकों के भेद अथवा फ़िरकों के झगड़े उनके अन्तर की आत्मा के एक होने में फ़र्क नहीं ला सकते। ख़िल्कत के साथ प्रेम करना भी, एक प्रकार से, मालिक के साथ प्रेम करना है।

"एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कऊन भले को मंदे ॥"

(प्रभाती कबीर, १३४९-१९)

यही सच्चा मज़हब, सच्चा धर्म, शराअ (नीति), दीन तथा ईमान हैं। शेख़ सादी साहिब ने इसी के बारे में फ़र्माया है कि हे मालिक, तेरी भक्ति तेरे बन्दों की सेवा करने में है; माला फेरने, आसन जमा कर बैठे रहने अथवा गुदड़ियाँ पहन लेने में नहीं।

"तरीक़त बजुज़ ख़िदमते ख़ल्क़ नेस्त
व तस्बीह ओ सज्जादह्-ओ दल्क़ नेस्त"

सब घटों के अन्दर मेरा साँई है, कोई सेज उससे सूनी नहीं, किन्तु जिस घट के अन्दर वह प्रकट है वह बलिहार जाने योग्य है।

"सब घट मेरा साईयाँ सूनी सेज न कोय।
बलिहारी तिस घट की, जा घट परगट होय॥"

यदि मनुष्य यह जान ले कि सब घट मेरा साईं बस रहा है, कोई उससे खाली नहीं, तो अपने आप ही उसके अन्दर प्रत्येक हृदय के लिये आदर पैदा हो जायेगा।

"चो बदानस्ती के दर दिल हा ख़ुदा अस्त।
बस तुरा आदाबे हर दिल मुदआ अस्त॥"

तू ज़िन्दा दिलों की परिक्रमा कर, क्योंकि यह दिल हज़ारों काबों से बेहतर है। काबा तो हज़रत इब्राहीम के पिता का बुतख़ाना था, पर यह दिल रब्ब अथवा ईश्वर के प्रकट होने का स्थान है।

"क़ाबा बनगाहे ख़लीलें आज़र अस्त।
दिल गुज़रगाहे जलीले अकबर अस्त॥
दिल बदस्त आवर के हज्जे अकबर अस्त।
अज़ हज़ाराँ क़ाबा यक दिल बेहतर अस्त॥" (मौलवी रूम)

किसी फ़कीर ने क्या सुन्दर वचनों में कहा कि ऐ दिल, तू दिलों की परिक्रमा कर, क्योंकि यही छिपा हुआ सच्चा काबा है। काबा शरीफ़ तो हज़रत इब्राहीम ने बनवाया था, पर यह दिल उस रब्ब ने स्वयं बनाया है।

"दिला तवाफ़े दिलाँ कुन के क़ाबा मख़्फी अस्त।
के आँ ख़लील बना कर्दो ईं ख़ुदा ख़ुद साख़्त॥"

दिल दुखाने से कभी मालिक प्रसन्न नहीं होता, चाहे कोई हज़ारों पूजा इबादतें और तौबा करे, हज़ारों रोज़े रखे और हरएक रोज़े में हज़ार हज़ार ही नमाज़ें पढ़े तथा हज़ारों रातें उसकी याद में गुज़ार दे। यह सब कुछ मालिक को मंज़ूर नहीं यदि वह एक दिल को भी सताता है।

"हज़ार जुह्‌दों इबादत हज़ार इस्तगफ़ार।
हज़ार रोज़ह-ओ हर रोज़ह रा नमाज़ हज़ार॥
हज़ार ताअते शबहा हज़ार बेदारी।
कबूल नेस्त अगर ख़ातरे ब्याज़ारी॥" (मग़रबी)

हाफ़िज़ साहिब कहते हैं कि शराब पी, कुरान शरीफ़ जला दे, काबे में आग लगा दे, जो चाहे कर, पर किसी इन्सान के दिल को न दुखा।

"मय ख़ुरो मुसहफ बसोज़ो आतिश अन्दर काबा ज़न।
हर चे ख़्वाही कुन वलेकन मर्दम आज़ारी मकुन॥" (हाफ़िज़)

इसलिये जब तक तू ख़ुदा के बन्दों को प्रसन्न नहीं करेगा, तू मालिक की रज़ा की प्राप्ति से वंचित रहेगा। यदि तू चाहता है कि मालिक तुझ पर बख़्शिश करे तो उसकी ख़िलकत के साथ नेकी कर।

"हासिल नशवद तुरा रज़ाए।
ता ख़ातिरे बन्दगाँ न जोई॥
ख़्वाही के ख़ुदाए बरतो बख़्शद।
बा ख़ल्के ख़ुदाए बकुन नकोई॥" (शैख़ सादी)

ईश्वर से प्रत्येक मनुष्य को एक से अधिकार प्राप्त हैं

पहले बाहरी हालतों पर दृष्टि डालें। राजा-प्रजा, अमीर-ग़रीब, एक अथवा दूसरी कौम के बन्दे, सबकी पैदाइश एक-सी ही होती है। सभी

इन्सान अपने माता-पिता के रक्त-वीर्य से उत्पन्न होते हैं और एक जैसे ही सब माता के गर्भ में नौ-दस महीने रह कर, समान प्रकार से ही जन्म लेते हैं। यह नहीं कि ब्राह्मण की उत्पत्ति और प्रकार से होती हो और मुसलमान की और प्रकार से। कबीर साहिब फ़र्माते हैं—

"जो तूं ब्राह्मण ब्रह्मणी जाइआ॥
तउ आन बाट काहे नही आइआ॥ (गउड़ी कबीर, ३२४-१७)

सब को मौत भी एक-सी आती है। यह नहीं कि एक कौम के मनुष्य की मृत्यु एक प्रकार से होती हो तथा दूसरे की दूसरी प्रकार से। सब को बिमारियां एक जैसी होती हैं, यह नहीं कि एक कौम के मनुष्य को बुख़ार एक प्रकार से चढ़ता हो तथा दूसरी कौम के बन्दे को दूसरी प्रकार से। इसी प्रकार इनकी बिमारियों का इलाज भी एक सा ही होता है। बुख़ार उतारने के लिये एक ही फीवर मिक्सचर सब को दिया जाता है। इसी प्रकार अन्य बिमारियों का इलाज भी समान ही है। मच्छर काटता है, तो क्या वह एक कौम के आदमी को काटता है और दूसरी कौम के आदमी को नहीं? हँसना-रोना भी सबका एक सा ही है। सर्दी गर्मी भी सबको एक सी लगती है। जीवन के आवश्यक पदार्थ (हवा, पानी, प्रकाश, सब्ज़ी, फ़ल आदि) सब के लिये एक जैसे ही हैं।

सब कौमों के मनुष्यों की बनावट भी समान ही है। एक जैसी आँखें, एक जैसे कान, एक जैसे ही शरीर और उनके अन्दर एक से ही प्राण भी हैं। फिर ये शरीर भी एक से ही तत्वों (मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश) के बने हुये हैं। एक ही धरती के ऊपर तथा एक ही आकाश के नीचे सब रह रहे हैं।

मज़हबों के ज़ाहिरी भेद मनुष्य के बनाये हुए हैं जो उसकी संकीर्णता और स्वार्थ के कारण हैं

जब-जब महात्मा संसार में आते हैं, वे संसार को एक-सा उपदेश देते हैं कि सारे मनुष्य मालिक ने पैदा किये हैं। जिस प्रकार शरीर के रोग मनुष्य को बेकार कर देते हैं, इसी प्रकार मनुष्य के हृदय में रोग लग कर उसे हैवान से भी कहीं निकृष्ट तथा एक दूसरे के ख़ून का प्यासा तक बना देते हैं। वे रोग ख़ुदग़र्ज़ी अथवा स्वार्थ, जहालत (अज्ञान) और तअस्सुब (संकीर्णता) के हैं, जिनमें फँस कर मानव अधोगति को प्राप्त होता है। जब भी धर्मों के अन्दर पाक रूहें आती हैं तो वे यही सिखाती हैं कि धर्मों के भेद उस धार्मिक अभिमान और रूहानी 'हौमै' अथवा आत्मिक अहंकार की वजह से हैं जो

कि भिन्न-भिन्न मतानुयाइयों की संकीर्णता और वहम अथवा भ्रम द्वारा पैदा होते हैं। धर्मों में अन्तर का कारण भ्रम है जिसमें स्वार्थ, अभिमान और धार्मिक संकीर्णता रूपी बिच्छू हैं जो मनुष्य को डंक मार कर, कठिन पीड़ा देकर, बेचैन और बेहाल कर रहे हैं। हाफ़िज़ साहिब फ़र्माते हैं—

"कुफ्र और इस्लाम, दोनों के अन्दर एक ही सत्ता झलकती है। सारे मज़हबों के फ़र्क वहमों की वजह से हैं। तअस्सुब और तंगदिली द्वारा ही शेख तथा ब्राह्मण का प्याला अलग-अलग हो रहा है, नहीं तो परमार्थ के मयखाने में एक ही साक़ी (मुर्शिद) नाम की मय पिलाने वाला है तथा एक ही प्याला चल रहा है।"

"यक हक़ीकत जल्वागर दर कुफ्रो इस्लामस्तो बस।
इख़्तलाफ़ाते मज़ाहब जुमला औहाँम अस्तो बस॥
अज़ तअस्सुब कासाए शैख़ो बराहमन शुद जुदा।
वर्ना दर मयख़ाना यक साक़ी-ओ यक जामअस्तो बस॥"

संत-महात्मा बताते हैं कि सबका पिता, वाहिगुरु अकाल पुरुष एक ही है। वह सारे संसार का मालिक है, रब्बुल आलमीन (सारे संसार का ईश्वर) है। वह किसी विशेष जाति अथवा धर्म का नहीं है। मनुष्य-मनुष्य सब एक ही हैं। कोई मुण्डी, कोई संन्यासी, कोई योगी, कोई हिन्दू, कोई तुर्क, कोई राफ़ज़ी[1] अथवा इमाम साफ़ी[2] कहलाते हैं, पर मानव की जाति केवल एक ही है। कर्ता और करीम एक ही के नाम हैं। राज़िक़ (रोज़ी देने वाला) और रहीम भी वही है, इस में कोई भिन्नता अथवा भेद नहीं। ये नाम भी ऋषियों-मुनियों, फ़कीरों, संतों-महात्माओं के रखे हुये हैं। वह तो अनाम है, जिस नाम द्वारा भी उसे याद करो, वह हुँकारा भरता है।

"बनामे ऊ के ऊ नामे नदारद,
ब हर नामे ख़्वानि सर बर आरद।"

भ्रमों में फँसना नहीं चाहिये। हमें एक ही मालिक की पूजा-सेवा करनी है, हमारा सबका एक ही गुरुदेव है। सब उस मालिक के स्वरूप हैं और सबके अन्दर एक ही ज्योति काम कर रही है। मनुष्य की जाति सब एक ही है। श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी साहिब का वचन है—

"कोऊ भइयो मुण्डीआ सनिआसी कोऊ जोगी भइयो,
कोई ब्रह्मचारी कोऊ जती अनुमान बो॥

---

१. राफ़ज़ी—शिया मुसलमानों का वह दल जिसने हज़रत अली के पुत्र ज़ैद का साथ छोड़ दिया था।

२. इमाम साफ़ी—फ़ारस के प्रसिद्ध फ़कीर साफ़ी के अनुयायी।

हिन्दू तुरक कोऊ राफ़ज़ी इमामसाफ़ी
मानस की जात सभै एकै पहिचानबो ।।
करता करीम सोई, राजक रहीम ओई,
दूसरे न भेद कोई, भूल भ्रम मानबो ।।
एक ही की सेव, सब ही को गुरदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो ।।१५।।८५।।"

(अकाल स्तुति)

हम सब एक ही नूर से उत्पन्न हुये हैं।

पूजा–उपासनाओं तथा धर्म-स्थानों का प्रयोजन केवल मालिक का स्मरण करना है और सच्चा मन्दिर यह शरीर है ?

जितने तरीके इबादत (पूजा) के हैं, सबका प्रयोजन एक ही है। धर्म-पुस्तकें अलग-अलग काल अथवा समय में लिखी गईं और अपने समय के अनुसार उनमें पूजा और इबादत के तरीके भिन्न-भिन्न बताये गये। उन सबका ध्येय मालिक के प्रति प्रेम उत्पन्न करना तथा उसका दर्शन प्राप्त करना था। जिस प्रकार तीरन्दाज़ चाहे कितने ही हों, उनका निशाना एक ही होता है, उसी प्रकार सारे पूजा-पाठों का आदि ध्येय भी एक ही है।

"अपणे अपणे मीत की सभी मनाएँ टेक।
रज्जब निशाना एक है, तीरन्दाज़ अनेक ।।"

कुरान शरीफ़ में (देखो सूरत नहल का पाँचवाँ रकू) भी यही कहा गया है कि "इन्सानों के वास्ते अलग-अलग शरीअतें और इबादत के तरीके रचे गये और हर एक कौम में ऋषि व पैग़म्बर भेजे गये।" उमर ख़य्याम जी फ़र्माते हैं कि मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और गिरजे सब ही उस रब्ब की पूजा के स्थान हैं। उनमें घंटे और शंख का बजाना आन्तरिक रूहानी राग की ओर इशारा है। मस्जिद में मेहराब के सामने नमाज़, गिरजे में तस्बीह (माला) और ईसाइयों के सलीब (ईसा की सूली का चिह्न) अथवा क्रास के निशान, सब उस मालिक की इबादत के अलग-अलग चिह्न हैं।

"मेहराबो कलीसा-ओ तस्बीह-ओ सलीब।
हक्का के हमा निशानाए बन्दगी अस्त ।।
बुतख़ाना-ओ काबाख़ाना-ए बन्दगी अस्त।
नाकूस जदन तरानाए ज़िन्दगी अस्त ।।"

इन धर्म-स्थानों में बैठ कर हमें अपने शरीर के सच्चे हरि-मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे या गिरजे के अन्दर जाना पड़ता है। इबादत का वास्तविक सम्बन्ध हमारे दिल के साथ है, वह किसी बाहर-मुखी स्थान अथवा इबादत के तरीके का मुहताज नहीं। यदि साफ़ और पवित्र दिल में केवल सच्चे मालिक की पूजा की जाये और उससे केवल उसी को माँगा जाये, तो वह पूजा सफल होती है। यह शरीर हरि-मन्दिर है। यह सम्पूर्ण जगत् हरि-मन्दिर है। उसके भक्त प्रत्येक स्थान पर उसकी पूजा करते हैं, क्योंकि वह सब जगह है। कुरान शरीफ़ में भी (देखो अलबकर) हज़रत साहिब यही फ़र्माते हैं, "अल्लाह ही की मल्कियत है, मशरिक (पूर्व) में चाहे मग़रिब (पश्चिम) में, जिस तरफ़ भी तुम रुख़ करो, उधर ही अल्लाह का रुख़ है, क्योंकि वह अल्लाह ताला हर जगह व हमा-दाँ (सर्वज्ञ) है।"

यही विचार अलनिसाई जी भी प्रकट करते हैं, मेरे वास्ते सारी ज़मीन मसजिद सी पाक है। जहाँ भी मेरे किसी अनुयायी का नमाज़ का समय आ जाये, वह वहीं पर अदा कर ले।" वास्तव में, जहाँ भी हम श्रद्धा और भावना के साथ मालिक के आगे नत हो जायें, वही स्थान पवित्र है।

जिन अन्धों के ज्ञान-नेत्र नहीं खुले, उनके लिए मिट्टी व पानी के मन्दिर-मसजिद ही सब कुछ हैं, पर जो साहिब-दिल या सच्चे ज्ञानी हैं, उनका हृदय ही सच्चा मन्दिर और मस्जिद है जिसमें कि मालिक की प्राप्ति होती है।

"मस्जिदे कोराँ-ज़े आबो गिल बवद,
मस्जिदे साहिब दिलाँरा दिल बवद।"

मग़रिबी साहिब फ़र्माते हैं कि प्रीतम तेरी बग़ल में है। तू क्यों उससे बे-ख़बर है? वह तेरे अन्दर है पर तू दर-ब-दर भटक रहा है। जिसको हमें सिज्दा करना है, वह जब हमारे अन्दर है, तो हमारा मस्जिद में जाने का काम बेकारी से बेहतर नहीं।

"यार दर पहलू चिरा ऐ बेख़बर,
यार दर तू बगर्दी दर बदर।
गर बवद मस्जूद अन्दर दिलो मा मस्जिद रवेम,
बेहतर अज़ बेकारी ईं हरगिज़ न बाशाद कारे मा।
अब्लहाँ ताज़ीमे मस्जिद में कुनन्द,
दर जफ़ाए अहले दिल जद में कुनन्द।"

बुद्धिहीन लोग मस्जिद अथवा धर्म-स्थानों की पूजा करते हैं। सच्चे परमार्थी अपने दिल के मन्दिर की सफ़ाई का प्रयास करते हैं। वह नकल है

तथा यह हक़ीक़त है। संतों के अतिरिक्त और कोई मस्जिद नहीं। तुलसी साहिब यही फ़रमाते हैं—

"नकली मन्दिर मस्जिदों में जाय सद अफ़सोस है।
कुदरती मस्जिद का साकिन दु:ख उठाने के लिए।।"

कबीर साहिब का भी यही दृढ़ विचार है—

"कबीर हज काबे हउ जाइ था, आगै मिलिया खुदाइ।।
साँई मुझ सिउ लरि परिआ, तुझै किन्हि फुरमाई गाइ।।"

(सलोक कबीर, १३७५-४)

सच्ची मस्जिद या सच्चा मन्दिर यह शरीर है—

"हरि मंदरु ऐहु सरीरु है, गिआनि रतनि परगटु होइ।।"

(प्रभाती म. ३, १३४६-५)

हाफ़िज़ साहिब फ़र्माते हैं कि हे मालिक मसजिद या अन्य धर्म-स्थानों में जाना केवल तेरी याद का नशा पीने तथा तेरा विसाल (मिलाप) पाने की ग़रज़ से है। इसके सिवाय वहाँ जाने का और ख़याल नहीं।

"ग़रज़ ज़ मस्जिदो मयख़ाना अम वसाले शुमा अस्त।
जुज़ ईं ख़याल न दारम गवाह रू मन ख़ुदा अस्त।।"

धर्म-स्थान मिट्टी तथा पानी से, मनुष्य के हाथों द्वारा, बनाये हुए हैं और सब एक से ही हैं। इनमें वही स्थान उत्तम है जो मालिक की याद से प्रकाशमान हो।

"हर्गिज़ मगो के काबा ज़े बुतख़ाना बेहतर अस्त।
हर जा के अस्त जल्वाए जानाँ ख़ुश्तर तुरा अस्त।।"

दसवें गुरु साहिब इसी ख़याल का सुन्दर वर्णन करते हैं—

"देहिरा मसीत सोई पूजा औ निमाज़ ओई।
मानस सभै एक पै अनेक को भ्रमाउ हैं।।
देवता अदेव जच्छ गन्धर्व तुरक हिन्दू।
निआरे निआरे देसन के भेस को प्रभाउ हैं।।
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान।
ख़ाक बाद आतश औ आब को रलाउ हैं।।
अलह अभेख सोई पुरान और कुरान ओहो।
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ हैं।।"

गुरुवाणी कहती है कि बाहर क्यों जायें, घर के अन्दर ही रङ्ग फैला हुआ है। गुरु की कृपा द्वारा अपने मन-मन्दिर में मालिक मिल जाता है। बाहर

जहाँ भी जायें पानी और मिट्टी के मकान बने हुए हैं। सब ग्रन्थ शोध कर देख लिये, वे यही कहते हैं कि मालिक हर स्थान पर है, वहाँ तब जाओ जब कि वह यहाँ न हो। पर ये भ्रम सतगुरु के मिलाप से ही दूर होते हैं।

"कत जाईऐ रे घर लागो रंगु ॥ मेरा चितु न चलै मनु भइओ पंगु॥१॥रहाउ॥
एक दिवस मन भई उमंग॥ घसि चंदन चोआ बहु सुगंध॥
पूजन चाली ब्रहम ठाइ॥ सो ब्रहमु बताइओ गुर मन ही माहि॥ १ ॥
जहा जाईऐ तह जल पखान॥ तू पुरि रहिओ है सभ समान॥
बेद पुरान सब देखे जोइ॥ ऊहाँ तउ जाईऐ जउ ईहाँ न होइ॥ २ ॥
सतिगुर मै बलिहारी तोर॥ जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर॥
रामानंद सुआमी रमत ब्रहम॥ गुरु का सबदु काटै कोटि करम॥३॥१॥"

(बसंत रामानंद, ११९५-१४)

बाहर मंदिरों, मसजिदों, धर्मशालाओं व गिरजों में जाने का ध्येय केवल मालिक का किसी न किसी प्रकार स्मरण करना ही है। भक्तों के समीप इनका इतना ही प्रयोजन है।

गुरु अर्जुन साहिब फ़र्माते हैं, चाहे कोई राम कहे या खुदा, गुसाँई को पूजे या अल्लाह को, सब एक ही 'करन कारन करीम' है। वह करीम सब पर एक सा कृपालु है, चाहे कोई तीर्थों में नहाये या हज को जाए, पूजा करे या सिर को नमाए, वेदों को पढ़े या अन्य धर्म-शास्त्रों का पाठ करे, नीले कपड़े पहने या सफेद बाना रखे, तुर्क कहलाए अथवा हिन्दू, बहिश्तों की लालसा करे या स्वर्गों की। किन्तु, इन सबों में जो मालिक के हुकम को पहचानता है, वही मालिक के वास्तविक भेद को पा सकता है।

कोई बोलै राम राम कोई खुदाइ॥
कोई सेवै गुसईआ कोई अलाहि॥ १ ॥
कारण करण करीम॥ किरपा धारि रहीम॥१॥रहाउ॥
कोई नावै तीरथि कोई हज जाइ॥
कोई करै पूजा कोई सिरु निवाइ॥ २ ॥
कोई पढ़ै बेद कोई कतेब॥ कोई औढै नील कोई सुपेद॥ ३ ॥
कोई कहै तुरकु कोई कहै हिंदू॥ कोई बाछै भिसतु कोई सुरगिंदु॥४॥
कहु नानक जिनि हुकमु पछाता॥ प्रभ साहिब का तिनि भेदु जाता॥५॥

(रामकली म. ५, पृ० ८८५-८)

हिन्दुओं की धर्म-पुस्तकें संस्कृत भाषा में हैं, मुसलमानों की अरबी तथा फ़ारसी ज़बान में हैं, सिक्खों की गुरुवाणी पंजाबी, हिन्दी, आदि में है तथा

इंजील आदि ग्रन्थ अंग्रेज़ी और लैटिन में हैं। इसी प्रकार अन्य-अन्य धार्मिक पुस्तकें उनको प्रचलित करने वालों की भिन्न-भिन्न बोलियों में हैं। मालिक के सम्मुख बोलियों अथवा भाषाओं का कोई अन्तर नहीं। वे तो केवल मालिक के प्रति प्रेम प्रकट करने के साधन हैं तथा उनके द्वारा हमें वास्तविकता का ज्ञान होता है। वह मालिक अन-लिखित कानून और अन-बोली ज़बान है, उसका वर्णन भाषाओं द्वारा नहीं हो सकता। वहाँ कोई ज़बान अथवा बोली नहीं, एक अथवा दूसरी, किसी भाषा की कोई विशेष पवित्रता नहीं। भाषा तो केवल भावों को व्यक्त करने का साधन है। जिस भाषा में भी हो, हमें तो उस मालिक की प्रेम-वार्ता को सुनना तथा सुनाना है। यही विचार हाफ़िज़ साहिब प्रकट करते हैं—परमार्थ में कोई भी ज़बान हो, चाहे तुर्की चाहे ताज़ी (अरबी) सब समान हैसियत रखती हैं। उस प्रीतम की प्रेम-कहानी को सुनाओ, तुम उसे चाहो जिस ज़बान में सुना सकते हो।

"यके अस्त तुर्की-ओ ताज़ी दरीं मुआमला हाफ़िज़।
हदीसे इश्क बयाँ कुन बहर ज़बाँ के तू दानी।।"

कोई एक कौम का हो या दूसरी का, एक देश का हो अथवा दूसरे देश का, सब एक ही मालिक के बन्दे हैं तथा एक ही बाग के रंग-बिरंगे फूल हैं। एक ही जल-वायु में पल रहे हैं। एक ही धरती के ऊपर तथा एक ही आकाश के नीचे हमारा वास है। व्यर्थ छोटे-छोटे दायरे बना कर हम उनमें फँसे हुए हैं। उनका ध्येय हमें तन-मन के पिंजरे से मुक्त करना था, उलटे वे हमारे बन्धनों का कारण बने हुए हैं।

मसजिद हो चाहे बुतखाना (मन्दिर), सब एक ही चिराग़ से रोशन हो रहे हैं। हैरानी यही है कि फिर द्वेष क्यों?

"अज़ यक चिराग मस्जिदो बुतखाना रोशन अस्त।
दर हैरतम के दुश्मनीए कुफ्रो दीन चिरा अस्त।"

मसजिद हो अथवा मंदिर, गुरुद्वारा हो या गिरजा, इनमें जाने वालों का मुख्य ध्येय केवल उस एक ही प्रीतम की प्राप्ति है। पत्थरों की शक्ल भिन्न-भिन्न होते हुए भी उनके घिसने से पैदा हुई अग्नि के रंग में कोई अन्तर नहीं होता।

"नेस्त गैर अज़ यक सनम दर परदाए दैरो हरम।
कै शबद आतिश दो रंग अज़ इख़्तलाफ़े संगहा।।"

मज़हबों व मिल्लतों के राग अलापने वाले, एक ही मालिक का आदर्श रखते हुए भी आपस में लड़-लड़ कर मर रहे हैं। यह देख कर स्वाभाविक

ही, इन अज्ञानी शेखों, पंडितों तथा मजहबों के नाम तक से लोगों के हृदयों में घृणा पैदा हो रही है–

"अज़ आँ रोज़े के दीदम इख़्तलाफ़े मजहबो मिल्लत।
मरा बा शैख़ रब ते नेस्त-ओ नै बा ब्रहमन हम।"

आज वैतनिक (तनखाहदार) प्रचारकों के कारण धार्मिक मठ, व्यापार के अड्डे बन रहे हैं। श्रद्धा, विश्वास तथा सत्य का अभाव हो रहा है। यह देख-देख कर रब्ब के आशिक इनसे अलग रहते हैं। इस स्थिति का चित्र साँईं बुल्ले शाह किन मार्मिक शब्दों में खींचते हैं–

"धरमसाले धड़वाई रहिंदे, ठाकर द्वारे ठग।
विच मसीतां कसबीं रहिंदे, आशक रहिन अलग।"

मनुष्य-मनुष्य के बीच शत्रुता और परस्पर घृणा उन बे-समझ व्यक्तियों की कांट-छांट का फल है, जो कि स्वयं स्वार्थ, अज्ञान और धार्मिक संकीर्णता का शिकार हैं। गुरुवाणी में उन व्यक्तियों को 'मनमुख' कहा है जो अविद्या, स्वार्थ और तंगदिली में फँस कर सब को कोसते हैं तथा निर्दयता पूर्वक समाज की एकता को दर्जियों की भाँति कतरते चले जाते हैं। उनका मुख्य ध्येय अपनी मान वृद्धि होता है और वे स्वार्थ-वश दूसरों के अधिकारों को छीनने में लगे रहते हैं। उन्हें किसी और की उन्नति व प्रशंसा सुहाती नहीं। इनके विपरीत एक और प्रकार के लोग हैं, जो गुरुमुख हैं, जो परोपकार के पुञ्ज होते हैं और जो मालिक के साथ प्रेम तथा उसकी रचना के प्रति भ्रातृ-भाव रखते हैं। हज़रत मुहम्मद साहिब उन्हीं को मोमिन कहते हैं। कुरान शरीफ़ में मोमिन के बारे में फ़र्माया गया है कि मोमिन उन सब नबियों (पैगम्बरों) की, जिनका ज़िक्र कुरान शरीफ़ में किया गया है, तथा उन नबियों की जिनका ज़िक्र उसमें नहीं किया गया है, इज़्ज़त करता है।

सब धर्मों की सच्चाईयाँ समान हैं तथा एक ही उपदेश देती हैं

सच्चाईयाँ क्या धार्मिक अथवा नैतिक और क्या आत्मिक मनुष्य के लिये सब धर्मों में एक सी ही बतलाई गई हैं। सब धर्मों में इसी बात का मुख्य उपदेश है कि मनुष्य शुभ कर्म करे, उस रब्ब अथवा ईश्वर का आसरा ले और उसी में समा जाये। उनका मूल ध्येय परमात्मा से साक्षात्कार है। ईश्वर को पहचानना, उससे मिलाप करना, उसकी भक्ति करना, सम्पूर्ण मानव-जाति के साथ भ्रातृ-भाव रखते हुए मनुष्य की सेवा करना और स्वयं को पहचानना, यही सब धर्मों का उपदेश है। वेद कहते हैं, "सब मिल

कर उस परमात्मा की पूजा करो" (अथर्व वेद, ३-३०-५)। यदि मनुष्य परमात्मा पर भरोसा रख कर नाम के साथ जुड़ कर नेक कर्म करने लग जाए, तो यही वह सर्व-श्रेष्ठ धर्म है, जिसका उपदेश दुनिया में आकर सब संत-महात्मा देते चले आए हैं। यही वह विश्व-धर्म अथवा आलमगीर मज़हब है जो सब मनुष्यों के लिये समान है। यह न कभी बदला है, न कभी बदलेगा गुरु अर्जुन साहिब फ़र्माते हैं 'सब धर्मों में सर्व-श्रेष्ठ धर्म कौन-सा है? वह केवल हरि के नाम का जाप है जो कि सब से निर्मल कर्म है।

"सरब धरम महि स्रेसट धरमु॥
हरि को नामु जपि निरमल करमु॥"
(गऊड़ी म० ५, पृ० २६६-१३)

"हरि कीरति साध संगति है सिरि करमन कै करमा॥
कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखें का लहना॥"
(सोरठि म० ५, पृ० ६४२-७)

गुरु अर्जुन साहिब जी ने, ऊँची अथवा नीची जाति का कोई भेद-भाव न रखते हुए, सब महात्माओं (चाहे वे हिन्दू थे, चाहे मुसलमान) की अमूल्य वाणियों को गुरु ग्रन्थ साहिव में बराबर स्थान दिया। यह इस बात का सबूत है कि हक़ीकत एक ही है तथा उसके नाम भिन्न-भिन्न होने पर भी उसमें कोई अन्तर नहीं। संत-महात्मा दुनिया की किसी भी कौम में आकर, पशु-वत करतूतें करने वाले मनुष्य को मानवता का सबक देते हैं तथा उन्हें मालिक के गुणों से परिपूर्ण करके मालिक के साथ ही जोड़ देते हैं। वे धार्मिक संकीर्णता से मुक्त तथा रूढ़ियों से स्वतन्त्र रहते हैं। सब धर्म उनके अपने होते हैं। उनकी दृष्टि आत्मा पर होती है, शरीर पर नहीं। वे आत्मा की उन्नति का मार्ग बता कर बिछुड़ी हुई आत्माओं का मालिक के साथ मिलाप कराते हैं तथा सच्चे भ्रातृ-भाव को स्थापित करते हैं। उनका कार्य मनुष्य को प्रेम की लड़ी में पिरोने का होता है। उनका काम जोड़ना है (जोकि इलाही-हुक्म अथवा ईश्वरीय आदेश हैं), तोड़ना नहीं।

"तू बराए वसल करदन आमदी,
ने बराए फ़सल करदन आमदी॥" (मौलवी रूम)

अर्थात्, तुझे दुनिया में (रब्ब के साथ) जोड़ने के लिये भेजा गया था, (रब्ब से) तोड़ने के लिये नहीं।

ऐसे संतों अथवा फ़क़ीरों को हिन्दू-मुसलमान अथवा अन्य जातियों का भेद-भाव नहीं होता। गुरु नानक साहिब जहाँ हिन्दुओं के तीर्थों पर गये,

वहाँ मुसलमानों के मक्के-मदीने भी पहुँचे। वे हर एक मत और कौम के महापुरुषों से मिलकर मानव-जाति को उस मालिक की एकता तथा सब मनुष्यों के भाई-भाई होने का उपदेश देते रहे।

गुरु अर्जुन साहिब, हज़रत मियाँ मीर साहिब और छज्जू भक्त बड़े पक्के मित्र थे। गुरु हरि गोबिन्द साहिब ने मुसलमानों को इबादत करने के लिये मसजिद बनवा कर दी। दशम पातशाह गुरु गोबिन्द सिंह जी का हिन्दू-मुसलमान सब के साथ एक-सा-प्रेम था, यहाँ तक कि माछीवाड़े के युद्ध में तुर्कों के घेरे से निकाल कर लाने वाले मुसलमान ही थे। उनके समय में भाई घनइआ सिक्ख, रणभूमि में हिन्दू-मुसलमान सब को पानी पिलाता था। कुछ बे-समझ लोगों ने गुरु साहिब के पास शिकायत की। भाई साहिब को बुलाया गया तथा पूछने पर भाई साहिब ने कहा कि उन्हें सब के अन्दर एक ही जोत नज़र आती है। इस पर गुरु जी ने फ़र्माया कि भाई साहिब ने मेरी शिक्षा को ठीक-ठीक समझा है।

"जाको छूट गइओ भ्रम उरका॥
तिह आगे हिन्दू किया तुरका॥" (दसम पातशाही)

वह मालिक सबका रब्ब अथवा ईश्वर है, जो उसे मानते हैं उनका भी तथा जो उसे नहीं मानते उनका भी। भक्तों के हृदय में सब के प्रति प्रेम होता है। एक बार हज़रत मूसा के पास एक व्यक्ति आया। जब सब खाना खाने बैठे तो उस आदमी ने ईश्वर को याद नहीं किया। मूसा के हृदय में उसके प्रति घृणा उत्पन्न हुई। उस समय उसे आवाज़ सुनाई दी, "ऐ मूसा जिसको मैं खाना देता हूं, तू उससे नफ़रत करता है?" चाहे कोई आस्तिक हो अथवा नास्तिक, सबके साथ ऐसी हस्तियाँ प्यार करती हैं तथा चाहे सब लोग मुँह मोड़ लें, पर आवश्यकता पड़ने पर वे उनकी सेवा करने से नहीं हटतीं। वे महापुरुष जानते हैं कि हम सब उस मालिक के बच्चे हैं, चाहे हम उसे न पहचानते हों। हमें ईश्वर को पिता कहने का कोई अधिकार नहीं जब तक कि हम इनसान को अपना भाई नहिं कह सकते।

शरीअतों के स्वरूप तथा रस्मों में अन्तर का कारण तथा महत्व

शरीअतों (कर्मकाण्डों) के भिन्न-भिन्न रूप होने का कारण क्या है? इसका कारण अलग-अलग देशों की जलवायु तथा रीति-रिवाजों की भिन्नता है। उदाहरणार्थ. अरब रेतीला देश है, वहाँ पानी की कमी है, वहाँ मुसल्मान वुज़ू (हाथ पैर, मुँह, कान तथा गर्दन का धोना) करके ईश्वर की नमाज़ पढ़ सकते हैं। यहाँ तक कि यदि पानी न मिल सके तो रेत से पंच-स्नान

(तयम्मुम) करना काफ़ी है। इसी प्रकार बीकानेर आदि रेगिस्तानी इलाकों में, जहाँ पानी की कमी हैं, यह कहा जाता है कि जो व्यक्ति स्नान के लिये पाँच सेर से अधिक जल का उपयोग करता है, उसे मालिक के सम्मुख हिसाब देना पड़ेगा। परन्तु बाकी भारत में पानी बहुत हैं, यहाँ हिन्दुओं के लिये मालिक की पूजा के हेतु स्नान करना आवश्यक समझा गया है। इसी प्रकार पश्चिम में सिर नंगा रखना मान और अदब का चिह्न है, पर भारत में पैरों को नंगा तथा सिर को ढका रखना आदर व अदब की निशानी माना जाता है। इसी रिवाज के कारण ईसाइयों के गिरजों में सब नंगे सिर आते हैं, पर सिक्खों के गुरुद्वारों में नंगे सिर बैठना बे-अदबी समझी जाती है। भारत में धर्म-स्थानों में सब नंगे पैरों जाते हैं।

ये सब बातें शरीर से सम्बन्ध रखती हैं और इनका प्रयोजन केवल इतना ही हैं कि मनुष्य सावधानी तथा आदर-पूर्वक मालिक का स्मरण करे। उस मालिक की दृष्टि में बाहरी शक्लों अथवा आवरणों का कोई महत्व नहीं, उसे तो सब मनुष्य प्यारे हैं, जिस प्रकार पिता को अपने सब पुत्र प्यारे होते हैं।

जबकि सम्पूर्ण मनुष्य-जाति का एक ही सर्वव्यापी धर्म है, तो ये अलग-अलग फ़िर्के या सम्प्रदाय क्यों बन गये? जो सत्य हैं, वे सब धर्मों में एक से ही हैं। यह साम्प्रदायिकता उनके धार्मिक विश्वासों के परस्पर विरोध के कारण हैं। जब गुरु नानक साहिब मक्के-शरीफ़ गये और वहाँ के काज़ियों व अन्य लोगों से मिले तो उन्होंने गुरु साहिब से कहा कि नानक तू तौहीद (एकेश्वरवाद) का उपदेश देता है और हम भी तौहीद के कायल हैं, फिर हमारा तुझ से कोई फ़र्क नहीं। गुरु नानक साहिब ने उत्तर दिया कि मेरी तौहीद मुतलक (स्वतन्त्र) है और तुम्हारी तौहीद मुक़य्यद (बन्धनों में फंसी) है। एक ही रब्ब को तुम भी मानते हो, पर तुमने उस तौहीद द्वारा बन्दिशें (बन्धन) लगा दी हैं। मेरे मतानुसार उस मालिक के अनेकों ही रसूल* और अनेकों ही नबी इस दुनिया में आये, जो मालिक के प्रति दुनिया के लोगों का ध्यान लगाते गये। अनेकों ब्रह्मा, अनेकों ही विष्णु और शिव हो चुके

---

* जित दर लख महंमदा लख ब्रह्मे बिशन महेस ॥
लख लख राम वडीरीअहि लख राही लख वेस ॥
लख लख ओथे जती हहि सतीअहु ते संनिआस ॥
लख लख ओथै गोरखा लख लख नाथा नाथ ॥

(जनम साखी भाई बाले वाली, १४२)

हैं। अनेकों ही गोरख और नाथ हो चुके हैं, और अनेक ही आयेंगे। अनेक धर्म-पुस्तकें† कुरान आदि संसार में समय-समय पर रची गई तथा रची जायेंगी। लाखों पृथ्वी‡ लाखों आकाश तथा अन्नत पुरियें हैं। अनगिनत राम, कृष्ण, और बुद्ध आदि अवतार हुए हैं तथा होवेंगे।

वह मालिक अथाह है। एक जुज़ (अंश) कुल (सम्पूर्ण) के बारे में क्या कल्पना कर सकता है। एक सीमा में घिरा जीव उस असीम के बारे में क्या समझा सकता है? ईश्वर की स्तूति अथवा गुण-गान हम क्या कर सकते हैं? जितना ही उसकी ओर बढ़ें उतना ही वह विशाल से विशालतर प्रतीत होता है। वह समुद्र के समान है, एक मछली कैसे उसका अन्त पा सकती है।

"तू दरीआउ दाना बीना मै मछुली कैसे अंतु लहा ॥"

(सिरीरागु म० १, २५-६)

हरि बे-अंत है, हम उसे सीमित मान कर उनका वर्णन करते हैं। हम उसे क्या जान सकते हैं कि वह कैसा है।

"हरि बिअंतु हउ मिति करि वरनउ किआ जाना होइ कैसो रे ॥"

(सोरठि म० ५, ६१३-६)

आदर्श मनुष्य

मनुष्य अपने ही वर्ग में मिल कर रहने वाला जीव है। वह कोई न कोई समाज का निर्माण करके संसार-यात्रा को पूर्ण करता है। जहाँ कोई समाज न भी हो वहाँ भी कुछ बना ही लेता है। अतःएवं संत, मनुष्य के किसी भी बाहरी रहन सहन को नहीं छेड़ते। वे कहते हैं कि तुम चाहे किसी भी समाज के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करो, हो तो तुम मनुष्य ही। तुम्हारा पहनावा तुम्हारी मनुष्यता में फ़र्क नहीं ला सकता। सबसे पहले इन्सान बनो तथा सबके प्रति भ्रातृ-भाव रखो। मानवता के सब गुण धारण

---

† वेद कतेबां केतड़े बहि बहि करन बीचार ॥
गूनां गुन नसीहतां गूनां गून कलाम ॥
गूनां गुन पैकंबरां गूनां गून कुरान ॥
गूनां गून रसालड़े गूनां गून कलाम ॥ (जनम साखी, १५१)

‡ लख लख धरती अकास हैन पुरीआं लख अनंत ॥
लख लख कूरम मछि कछि लख लख भए वैराह ॥
लख लख ओथे नार सिंघ बावन लख अलाह ॥
राम कृष्ण अगनति बोधि कलंकी लख ॥
आवण जावण हुकम विच करते आंख फरक ॥
केतड़िआ अवतार लख बीते अन्त न पार ॥
केती होईआं उसतती किछु अन्त न पारावार ॥ (जनम साखी, १४२-४३)

करो, सच की कमाई करो, सबके साथ प्रेम-प्यार तथा सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार करो। सब जीव उस एक ही पिता के पुत्र हैं, अतएव हमारे भाई हैं।

"एकु पिता एकस के हम बारिक तू मेरा गुरहाई ॥"

(सोरठि म० ५, ६११-१९)

शरीर से तुम मनुष्य हो, अतएव उससे मनुष्यता की शान प्रकट होनी चाहिए। रूह अथवा आत्मा से तुम मालिक के अंश हो।

"कहु कबीर इहु राम की अंसु ॥ (गौंड कबीर, ८७१-१०)

"अल रूह अमरे रब्बी।"

तुम्हारे में से ईश्वरीयता का प्रकाश निकलना चाहिये। अपनी ईश्वरीयता को पहचानो।

वह परमात्मा मनुष्य में है और मनुष्य परमात्मा में है। इन्सान सारे अलौकिक भेदों का गुप्त खज़ाना है। वह एक शीशा है जिसमें मालिक के कमाल (कौशल) की नूरी किरणें चमकती हैं। वह हक़ (पूर्ण सत्य) की मूर्ति है और हक़ उसकी जान है। जान के बगैर इन्सान का क्या मूल्य है।

"सूरते हक़ी-ओ हक्क़त जाँ-बवद।
सूरते बे जाँ कुजा इन्साँ बवद॥"

"ब्रह्म बोले कायाँ के ओले ॥ कायाँ बिंन ब्रह्म किआ बोले ॥"

हज़रत अत्तार साहिब फ़र्माते हैं, ऐ, इन्सान! तू अन्तर में सारे आलम (विश्व) की जान है, दोनों आलम तू ख़ुद आप है, तू सब किताबों की माँ है, तेरे अन्दर मालिक की आयतें अपने आप उतर रही हैं।"

"तू बमानी जाने जुमला आलमे।
हर दो आलम ख़ुद तूई बिनगर दमे॥
दर हक़ीकत ख़ुद तूई उम-उल-किताब।
ख़ुद-ज-ख़ुद आयते हक़ रा बाज़ याब॥"

जिस्मानियत (शारीरिकता) में ख़ुदाइयत (ईश्वरीयत) को मिला कर इन्सान-ख़ुदा अथवा मानव-ईश्वर का जल्वा (शोभा) दुनिया में फैला कर इस दुनिया को मुकामे-हक्क (सच-खण्ड)बना दो। दुनिया को वह पाकिस्तान बना दो जहाँ ख़ुदी (अहङ्कार व स्वार्थ), बख़ीली (कृपणता) और तकब्बरी (अभिमान) को स्थान न मिले, जहाँ दुश्मनी का अंश भी न रहे, जहाँ ऐसे इन्सान हों जिनकी सूरत पर हैवानियत व शैतानियत का राज न हो। जहाँ कोई किसी का हक्क न छीने। जहाँ पर धक्केशाही हुकूमत और दण्ड देने के विभागों की ज़रूरत न रहे। जहाँ चोरी, ज़ुल्म और अत्याचार का ख़याल

तक भी न रहे। सब इन्सान खुदाई शान में विचरण करें। सारी धरती पाक लोगों के रहने का स्थान बन जाये। तभी वह वास्तव में पाकिस्तान अथवा पवित्र पुरुषों के रहने की भूमि बन सकेगी और तभी दुनिया ईश्वर के सच्चे और 'सुच्चे' (पवित्र) बन्दों के रहने का स्थान (ख़ालिस्तान) बन सकेगी।

एक ही आदर्श मनुष्य के सम्मुख है, वह है पूर्ण-मनुष्य बनने का। आदर्श मनुष्य बनो जो रूहानियत का स्वरूप हो। सेण्ट पॉल फ़र्माते हैं कि तुम ईश्वरीयता की शान में पूर्ण हो। सब धर्मों में उन आदर्श मनुष्यों की पूजा की आज्ञा है जो मालिक से अभेद हैं तथा दुनिया के सामने उस अविनाशी परम पुरुष का आदर्श (स्वयं नमूना बन कर) रख रहे हैं। भगवद्गीता में ज़िक्र आया है कि इस संसार रूपी वृक्ष की जड़ें आत्मिक मंडलों में हैं और शाखाएँ धरती की ओर। मनुष्य की जड़ें भी न नज़र आने वाली ईश्वरीयता के अन्दर हैं, उसका शरीर चाहे ज़ाहिरी दुनिया में बँधा पड़ा हो, पर रूह उसकी अविनाशी है। हमारी चेतन हस्ती के पीछे हमारा वह अलौकिक भेद है जिसके बिना हमारी चेतनता काम नहीं कर सकती। हमारे अन्दर की चेतनता कुछ गुप्त तथा कुछ प्रकट है। हमें उस चेतनता को प्राप्त करना चाहिये जो शरीर, मन और इन्द्रियों से स्वतन्त्र है।

संसार में ऐसी ईश्वरीय ताकतें (ख़ुदाई हस्तियाँ) आती रही हैं तथा इस आदर्श को दुनिया के सामने रखती रही हैं। गुरु नानक साहिब से लेकर गुरु गोबिन्द सिंह जी तक सब ने सिक्ख अथवा खालसा का उच्च आदर्श संसार के सम्मुख रखा। वह एक ऐसा आदर्श है जो कि सेवा,भक्ति, सबके प्रति प्रेम तथा निष्कामता का पुंज है, जो मालिक के रङ्ग में रङ्गने वाला तथा सुप्त हृदयों को जागृत करने वाला है, जो नेकी को उभारने और बदी का संहार करने वाला है। वह एक अद्भुत,अलौकिक और अगम मालिक की चित्रकारी का नमूना है जो धार्मिक अभिमान तथा संकीर्णता से मुक्त है। मुसलमानों और ईसाइयों में ऐसे गुणों से परिपूर्ण एक सच्चे मोमिन तथा एक सच्चे एवं पवित्र ईसाई का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। पश्चिम में प्यूरिटनों ने सत्य के सिपाहियों का नमूना दुनिया के आगे रखा। उन सब सन्तों-महात्माओं ने जो धुर-धाम तक पहुंचे, संसार के सम्मुख यही आदर्श उपस्थित किया है।

हज़रत मूसा कोह (पर्वत) तूर के ऊपर ख़ुदा का जलवा देखने गये, क्योंकि वे अपने आन्तरिक भेद से परिचित नहीं थे। सब भेद मनुष्य के अन्दर ही हैं। तू आदमी (पूर्ण पुरुष) की खोज में कदम रख, क्योंकि ख़ुदा

उसकी खोज में हैं–

"गदाए जल्वा रफ्ती बर सते तूर।
के जाने तू ज़ ख़ुद ना महरमी हस्त ।।
क़दम दर जुस्तजूए आदमी ज़न।
ख़ुदा हम दर जुस्तजूए आदमी हस्त ।।" (इकबाल)

रस्किन की शिक्षा का मुख्य भाव भी यही है कि दुनिया में इन्सान एक बड़ा अनमोल भण्डार है। धन-दौलत, सोना-चाँदी तथा अन्य सामान जो मनुष्य प्रयोग में लाता है कीमती नहीं बल्कि उनका उपयोग करने वाला इन्सान स्वयं अनमोल है। रस्किन कहता है कि ज़िन्दगी से बढ़ कर और कोई दौलत नहीं, वह ज़िन्दगी जो प्रेम और आनन्द की शक्ति से परिपूर्ण हो। वह देश सब से अधिक धनवान है जो बहुत से भले और प्रसन्न मनुष्यों का पालन करता हो। वह मनुष्य सर्वाधिक धनवान है जिसने अपने जीवन में पूर्णता प्राप्त कर ली हो तथा जिसके निज प्रभाव और दौलत से दूसरों के जीवन को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाता हो।

ऐसी हस्तियाँ सारी दुनिया के उद्धार का कारण बनती हैं। साँसारिक पदार्थों की सुन्दरता ऐसे नेक पुरुषों के रूहानी सौन्दर्य के आगे तुच्छ है।

परमार्थ की आवश्यकता

आजकल सारे संसार में खींच-तान, चिन्ता और फ़िक्र का राज्य नज़र आ रहा है। पहुँचे हुए महात्मा को छोड़ कर कोई भी, चाहे वह किसी जीवन स्तर पर है, इससे बचा नहीं है। यह इस बात का प्रमाण है कि आजकल रूहानियत का दीवाला निकला हुआ है। इस जड़ता का कारण आजकल के लोगों की अशाँत हालत है। दुनिया के लोगों ने हरएक विद्या में प्रगति की है पर वे अपनी आत्मोन्नति से बिल्कुल कोरे रह गये हैं। उन्होंने नदियों पहाड़ों और समुद्रों को खोज डाला, पर अपनी खोज नहीं की। सारी विद्याओं का मूल ध्येय क्या है ? यही कि मनुष्य स्वयं को पहचाने।

"इल्लते जुमला अलूम ईं अस्त-ओ ईं।
ता तू दानी मन क़ियम दर यौमे दीं ।।
क़ीमते हर कारे मे दानी के चीस्त।
क़ीमते ख़ुदरा नदानी अब्लही अस्त ।।"

प्रत्येक इल्म के बारे में हम जानते हैं; पर अपनी उस आत्मा के बारे में, जिसके सहारे सब विद्याओं की प्राप्ति होती है, जिसके आधार पर मन बुद्धि का सब कारोबार चल रहा है, हम कुछ भी नहीं जानते। अपना मूल्य

न जानकर इन्सान बेवकूफ़ बना हुआ है।

मनुष्य चाहे संसार के सब पदार्थों पर अधिकार प्राप्त कर ले पर यदि वह अपनी आत्मा के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता तो उसका सम्पूर्ण जीवन निष्फल चला जाता है। बाईबल का कथन है, "मनुष्य को क्या लाभ होगा यदि वह सारे संसार पर अधिकार पा ले परन्तु अपनी आत्मा को खो बैठे।"

आत्मा को न जानने से तथा अपने मूल स्रोत से न मिलने से हम अशान्त हो रहे हैं। हमारी इसी आन्तरिक अशान्ति का प्रभाव संसार पर पड़ रहा है जिसके फल-स्वरूप हम एक ही पिता की सन्तान होते हुए भी आपसी भ्रातृ-भाव को भूले बैठे हैं। इसी लिए, भाई-भाई, समाज-समाज, कौम-कौम और देश-देश आपस में टकरा-टकरा कर मर रहे हैं। एक-दूसरे के खून के प्यासे बन रहे हैं। बाहरी धर्मोपदेश और विधि-निषेध की शिक्षाएं हममें पारस्परिक प्रेम उत्पन्न न कर सकीं।

आजकल इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि परमार्थ का नये सिरे से प्रचार हो जिससे मानव-जाति इस गिरी हुई दुर्दशा से निकल सके। हमें आत्मिक-जीवन पर ज़ोर देना चाहिये ताकि मानव-जाति जो दुःखों से भरपूर हो रही है, जो मैं मेरी के घोर पापों में से गुज़र रही है, बचाव पा सके। आज दुनिया एक ओर नई रोशनी तथा दूसरी ओर पुरातन धार्मिक बन्धनों और मत-मतान्तरों के भ्रमों में उलझ कर तू-तू, मैं-मैं कर रही है। प्रचारक तथा विद्वान लोग, जिन्हें इन कठिनाइयों को हल करना चाहिए था, संसार को साम्प्रदायिकता, कर्म काण्ड तथा मनमाने धार्मिक विश्वासों की उलझन में फंसा रहे हैं। कोई पश्चिमी रोशनी में खाना, पीना मौज करना के सिद्धान्त पर मोहित हैं। वे कहते हैं कि हमें ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है। सबकी दृष्टि अख़रोट के छिलके तक ही जाती है, वे उसे ही हज़म करने के पीछे पड़े हुए हैं, पर वह हज़म हो नहीं सकता। उसकी गिरी की ओर ध्यान नहीं देते, जिसकी रक्षा के लिये यह बाहरी आडम्बर (छिलका) बना था। इसी खींच-तान की दशा में हम परमात्मा को खो चुके हैं और हक़ीकत से दूर जा रहे हैं।

"ऐ ख़ुदा जोयाँ ख़ुदा गुम करदा ईद।
गुम दरीं अमवाजे कुलज़म करदा ईद॥"

अर्थात्, "ऐ रब्ब को खोजने वालो! तुमने रब्ब को मन-रूपी समुद्र की लहरों में गुम कर दिया है।" ऐसे अवसरों पर संत सदा ही जीवों की नज़र असलियत की ओर मोड़ते हैं तथा संसार को एक सरल मार्ग का संकेत

देते हैं, जो मनुष्य-मात्र के अन्दर है, जो सत्पुरुष-कृत है और जो युगों-युगों से चला आया है,किसी मनुष्य का बनाया हुआ नहीं है। उसका स्पष्ट उल्लेख इस पुस्तक में "आदर्श धर्म" के अन्तरगत किया गया है। संत कहते हैं कि परमात्मा है तथा सब धर्म उसी को प्राप्त करने का यत्न करते हैं। ईश्वर प्राप्ति के मार्ग का नाम ही धर्म है। इसी को अंग्रेज़ी में रिलीजन कहते हैं। यह शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'रिलीगेअर' से निकला है, जिसका अर्थ है बाँधना, जोड़ना। इस शब्द के मूल में ही इसका असली तात्पर्य छिपा हुआ है। अतएव रिलीजन का अर्थ है--वापिस ईश्वर के साथ जुड़ना। यह रूहानी व्यवस्था सबके लिए समान है। जो परमात्मा के साथ अन्तर में जुड़े, वही सच्चा धर्मात्मा, मोमिन, सिक्ख, ईसाई तथा भक्त है। संत बताते हैं कि परमात्मा हमारे अन्दर है, इसी शरीर-रूपी मन्दिर में ही वह मिलता है। इस शरीर में आत्मा तथा परमात्मा दोनों एक साथ रहते हैं। किन्तु इन दोनों के बीच में हौमें (अहं) या ख़ुदी का परदा पड़ा हुआ है जिसके कारण आत्मा परमात्मा के दर्शन नहीं कर पाती।

"एका संगति इकतु गृहि बसते, मिलि बात न करते भाई॥"

(गउड़ी म. ५, २०५-२)

या यों कहें कि रूह-रूपी स्त्री और परमात्मा-रूपी पति दोनों एक ही सेज पर हैं, अर्थात् दोनों ही शरीर के अन्दर हैं, पर अफ़सोस की बात है, कई युग व्यतीत हो गये स्त्री ने पति के दर्शन नहीं किये।

"एका सेज विछी धन कंता॥ धन सूती पिरु सद जागंता॥"

(सूही म. ५, ७३७-१६)

कोई किसी जाति अथवा धर्म का हो, उसे मालिक की प्राप्ति के लिए अपनी जाति अथवा धर्म को छोड़ने की आवश्यकता नहीं,मनुष्य अपने अन्दर ही परमात्मा से मिल सकता हैं।

आजकल धर्म क्या समझा जाता है, तथा है क्या ?

आजकल धर्म, रूहानी सच्चाइयों के स्थान पर पुराण,इतिहास आदि का पठन-पाठन तथा सुनना-सुनाना ही रह गया है। वह प्राचीन महापुरुषों के जीवन की जांच-पड़ताल, धर्म-पुस्तकों के ईश्वर-कृत होने के प्रमाणों और उनकी शिक्षाओं के तर्क-वितर्कों तक ही सीमित हो चुका है। कई लोग नवीन विचारों को पुरातन पुस्तकों की शिक्षा के साथ मिलाने के यत्न में लगे हुए हैं। धर्म-शास्त्री अपने-अपने धर्मों के सच्चे होने का ढोल बजा रहे हैं। वे किसी एक अथवा दूसरे महात्मा पर, जिसे गुज़रे सैंकड़ो या हज़ारों वर्ष बीत चुके हैं, विश्वास करना ही आत्मा की बन्धन-मुक्ति का साधन समझ बैठे हैं।

इसी मज़हबी जनून (धार्मिक उन्माद) में वे इस तथ्य को भूल जाते हैं कि ईश्वर परम-आत्मा हैं जिसकी वास्तविक पूजा जीवात्मा का उसके साथ अभेद होना है। धर्म मालिक की ओर जाने के तथा सच्चे जीवन की प्राप्ति के मार्ग का नाम है। किन्तु धार्मिक रिवाज अथवा कर्मकाण्ड की संकीर्णता के फलस्वरूप किसी विशेष बाहरी स्वरूप अथवा भेष के धारण करने को, उसके रीति-रिवाजों पर चलने को तथा जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों के कारण को धर्म अथवा मज़हब कहा जाता है और उसके पालन के लिये ख़ास-ख़ास मन्त्रों आदि का विशेष विधि से उच्चारण करना ही काफ़ी समझा जाता है।

ख़ुदा की बादशाहत हमारे अन्दर है जिसका सब सन्त-महात्मा उल्लेख करते हैं और जिसके संकेत हमारे पास ग्रंथ-पोथियों में मौजूद हैं। आजकल अनुभवी पुरुषों की कमी के कारण धर्म कर्म-काँड के बाहरी बंधनों में ही रह गये। वे हमें यह नहीं सिखाते कि मनुष्य किस प्रकार अपने अंदर जा सकता है तथा किस प्रकार ख़ुदा की बादशाहत को पा सकता है। वे हमें मनोवृत्ति के फैलाव के उस विष से, जोकि सब पर चढ़ा हुआ है, बचने में सहायता नहीं कर सकते। वे हमें पिछले समयों में हुए एक अथवा दूसरे महात्मा (मसीह, बुद्ध, कृष्ण, राम, कबीर, गुरु नानक आदि) की पूजा करने का उपदेश देते हैं। पर वे यह नहीं बताते कि वे महात्मा उस उच्च पद पर किस प्रकार पहुँचे तथा अब हम उनके स्वरूप को कैसे पा सकते हैं। वे एक अथवा दूसरी धर्म-पुस्तक के इलहामी (ईश्वर-प्रणीत) होने का विश्वास करने पर जोर देते हैं, पर यह नहीं बताते कि उनमें जो वृत्तान्त और अनुभव लिखे हैं वे हमारे अनुभव में किस प्रकार आ सकते हैं। वे ये तो कहते हैं कि हम भवसागर से पार कैसे हो सकते हैं तथा वह जहाज़ जिस पर चढ़ कर पार जाना है कौन-सा है, पर उस पर हमें चढ़ा नहीं सकते। उनके पास भवसागर से तरने का कोई सामान नहीं है, उन्हें तो इस भवसागर के सफ़र का भी पता नहीं और न ही उन्हें इसके तूफ़ानी वेग को वश में करने का कोई तरीका आता है।

जब तक मनुष्य सावधान होकर अन्तर-आत्मा में उस मालिक से नहीं मिलता, उसके गुणों और उसकी सत्ता को अपने अन्दर ग्रहण नहीं करता, उसके सम्पूर्ण कर्म-धर्म व्यर्थ हैं, निष्फल हैं। वह मालिक अपार अनश्वर परिपूर्ण सुन्न का समुद्र है। जब तक हमारे अन्दर पूर्ण शान्ति अथवा मौन न हो, हमारी आत्मा उस शान्ति का अनुभव नहीं पा सकती जिसमें से शब्द की वह ध्वनि उत्पन्न होती है, जिसे ग्रहण करके हमारी आत्मा अशब्द में लीन हो सकती है। यह शान्ति अथवा मौन ही असलियत है। जो

वस्तु सदैव व अटल है उसका अनुभव हमारी बुद्धि नहीं, आत्मा ही कर

सकती हैं। यह हम अपने अन्दर जाकर देख सकते हैं। हम ईश्वर का ख्याल नहीं कर सकते क्योंकि वह मन-बुद्धि से परे हैं।

"सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार ॥" (जपुजी)

परमात्मा को हम स्थूल रूप में नहीं देख सकते, हम केवल अपने अन्दर, सूक्ष्म और कारण से पार होकर ही, उसका अनुभव कर सकते हैं।

"एवडु ऊचा होवै कोइ ॥ तिसु ऊचे कउ जांणै सोइ ॥" (जपुजी, ५-१०)

हम उसे भक्ति और प्रेम द्वारा पा सकते हैं, ख्याल अथवा विचार द्वारा कदापि नहीं। हमें अपने अन्दर ही निर्मल चेतनता के देश में पहुँचना चाहिये। विचार की सीमा हमारी चेतनता को घेर लेती है, हमें विचारों की सीमा के पार जाना चाहिये। आत्मिक जीवन ईश्वर के साथ मिलाप का नाम है, सोच-विचार का नहीं।

संतमत और अन्य धर्मों में अन्तर

सन्तमत सुरत-शब्द के मार्ग का नाम है, अथवा सुरत का, मालिक परिपूर्ण (शब्द) के साथ मिलने का अन्तर्मुख अनुभव है। यह अनुभव मत-मतान्तरों से कहीं ऊँचा है। इसी को हम सन्त-मत या सन्तों की शिक्षा कह कर पुकारते हैं। यह शिक्षा परमार्थ के असली सिद्धान्तों का वर्णन करती है। यह धर्मों से कहीं बढ़कर है, क्योंकि धर्म तो केवल सिद्धान्तों, मतों और चमत्कारों का ही वर्णन करते हैं। सच्चा विज्ञान (साइंस) किसी बात को यों ही मान लेने की शिक्षा नहीं देता, सन्तों की शिक्षा तो गणित की तरह ठीक उतरती है। हर एक जाति के लोगों ने जब भी इस शिक्षा को धारण करके अपने अनुभवों का वर्णन किया तो सब एक ही नतीजे पर पहुंचे।

रूहानी जीवन व्यतीत करने का उद्देश्य यही है कि मनुष्य माया के आवरणों (परदों) से मुक्त होकर स्वयं को पहचान ले कि वह आत्मा है जो स्वयं चेतन है तथा महाचेतन के समुद्र का अंश है, ताकि वह उस महाचेतन के सागर में मिल जाये तथा उसके रंग और गुण इसके अन्दर प्रत्यक्ष प्रकट हो जायें अर्थात् रूह रूपी बूंद मालिक-रूपी समुद्र में समा जाये। आत्मिक-जीवन गुरु की सहायता से बाहरी रचना को लताड़ कर, उस सर्व-शक्तिमान तक, थोड़े ही समय में पहुँचना है—यह काम लाखों वर्षों में भी मनुष्य अपने आप नहीं कर सका। सुरत-शब्द-योग का मार्ग सीधा है। धनी अथवा निर्धन, उच्च अथवा नीच कुल वाला, विद्वान् या अनपढ़, पूर्वी या पश्चिमी, उत्तरी अथवा दक्षिणी प्रत्येक मनुष्य के लिये यह एक ही मार्ग है, जिसका वर्णन 'गुरुमत सिद्धान्त' में किया गया है। सुरत-शब्द-योग का अभ्यास जीवन

में आनन्द का देने वाला है। वह प्रकृति के अन्य नियमों की भान्ति सादा, स्वाभाविक और भली प्रकार समझ कर अभ्यास करने वालों के लिए सरल है। पर उन लोगों के लिये जो समझते-बूझते नहीं बल्कि अन्ध-परिपाटी में लगे रहते हैं, यह कठिन है।

संत-जन संसार-सागर के मल्लाह हैं, आत्मा को परमात्मा के साथ मिलाने के ठेकेदार हैं। संत वे पवित्र आत्माएं हैं जो धुर-धाम से आकर शरीर के पिंजरे के वन्धनों को स्वीकार करके, रूहों को मालिक की ओर ले जाने का व्यापार करती हैं।

"चीस्त रूह आँ तायरे कुदसी सिफ़त।
दर कफ़स महबूस बहरे मारफ़त॥
आमदा बहरे तिजारत अज़ अदम।
रू बदाँ सू बाशद ऊ रा दमबदम॥" (मौलवी रूम)

उनके अनमोल रूहानी भण्डार अर्थात् सुरत-शब्द के अनुभव भरे वचन धर्म-पुस्तकों में दर्ज हैं। वे सारे संसार की समान रूप में सम्पत्ति हैं। जिस प्रकार परमात्मा सबके लिए एक समान है, उसी प्रकार संत-जनों के अनुभव सम्पूर्ण मानव-जाति के मार्ग-दर्शन के लिये हैं, किसी विशेष जाति अथवा धर्म की सम्पत्ति नहीं! परमात्मा उनका है जिन्हें परमात्मा ने अपना बना लिया है।

"आपन बापै नाही किसी को भावन को हरि राजा॥
मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ भगत नही संतापा॥"
(सोरठि, रविदास, ६५८–६)

गुरु साहिबों के अनमोल परमार्थी वचनों रूपी लाल 'गुरु ग्रंथ साहिब' के रूप में हमारे पास विद्यमान हैं। इस निधि को संसार के सम्मुख स्पष्ट रूप में प्रकट करने का तुच्छ-सा प्रयास "गुरुमत सिद्धान्त' में किया गया है।

"पीऊ दादे का खोलि डिठा खजाना॥
ता मेरै मनि भइआ निधाना॥" (गउड़ी, म. ५, १८६-१)

सुरत-शब्द योग का ध्येय हमारी आत्मा को सीधे मालिक से जोड़ने का प्रयत्न करना है। वह आत्मा को मालिक के अनुभव कराने का मार्ग है। दीक्षा के समय गुरु शिष्य को भली प्रकार समझा कर इस मार्ग पर लगा देता है। यह साइंस (विज्ञान) उतनी ही पुरातन है जितना कि मनुष्य है तथा यह सत्पुरुष-कृत है। जो सज्जन आत्मा को मालिक से जोड़ कर अपने अन्दर मालिक का प्रसाद पाना चाहते हैं वे "गुरुमत सिद्धान्त" को ध्यान-पूर्वक पढ़ें और विचार करें। संक्षेप में बात यही है कि उठो, जागो और संतों को, जो रूहानी बादशाह हैं, गली-गली, नगर-नगर, देश-देश, जहाँ भी वे मिल सकें,

ढूँढो तथा उनकी शरण लेकर इस मार्ग पर चलो, जो कि खड़ग की धार के समान है तथा जिसमें स्थूल शरीर के मोह को सूली पर चढ़ाना पड़ता है। किसी ऐसे महात्मा की तलाश करो जो तुम्हें असत्य से सत्य की ओर चलने का केवल उपदेश ही न दे, बल्कि स्वयं लोक-परलोक और रूहानी मण्डलों पर तुम्हारे साथ चले भी।

"बा तो बाशिद दर मकान-ओ ला मकाँ,
चूँ बमानी अज़ सराओ अज़ दुकाँ।"

"जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंन्हि ॥" (सूही म. १, ७२९-३)

"नानक कचड़िआ सिउ तोड़ि ढूढि सजण संत पकिआ ॥
ओइ जीवंदे विछुड़हि ओइ मुइआ न जाही छोड़ि ॥"
(मारू वार म. ५, ११०२-३)

तुम उनकी संगति में अपनी उस अन्तर-आत्मा को जागृत करो जो काल तथा समय की सीमा से परे है। हमारे सारे दुःख मालिक से बिछुड़ जाने की वजह से हैं। उससे अपनी अन्तर-आत्मा को जोड़ कर सुखी हो जाओ। संत हमारे सच्चे मार्ग-दर्शक व नेता हैं। उनसे सीखो कि तुम किस प्रकार शान्त हो सकते हो तथा किस प्रकार अन्तर में पूर्ण स्थिरता और मौन को प्राप्त करके अपने अन्दर सूर्यों के सूर्य की ओर मुख कर सकते हो।

संतों की शिक्षा स्वाभाविक और सबसे प्राचीन है। यह मनुष्य के साथ ही आई है। यह एक निश्चित और अटल मार्ग है जो कभी बदला नहीं, परम्परा से चला आया है तथा जिसे कोई घटा-बढ़ा नहीं सकता। गुरु, संत और महात्मा, जो मालिक से अभेद हैं, इस मार्ग की शिक्षा देते चले आये हैं। यह मार्ग स्वाभाविक है तथा व्यक्तिगत रूप में हम इसका अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। यह मनुष्य-कृत नहीं सत्पुरुष-कृत है। इस मार्ग में किसी को अंध-विश्वास करने की आवश्यकता नहीं, इसका अनुभव स्वयं अपने अन्तर में प्राप्त किया जा सकता है।

सम्प्रदायवाद

आम दुनिया की नज़र में शरीअत (कर्म-कांड) की महानता परमात्मा से भी बढ़ कर थापी गई है। अपनी धर्म-पुस्तकों पर केवल ईमान अथवा विश्वास रखने वाले तथा किसी पुराने महात्मा पर श्रद्धा धारण करने वाले व्यक्ति को सम्प्रदायवाद की दृष्टि में धर्मात्मा माना जाता है। यह सम्प्रदाय-वाद अमर बेल का कार्य कर रही है जो धर्म अथवा मज़हब से पलती है और धर्म का रंग लेकर उसी का रक्त चूसती है। यहाँ तक कि धर्म के प्राण तक उड़ जाते हैं और साम्प्रदायिकता मुरदा चमड़े में निवास करती है।

इस मज़बूत किले के अन्दर धार्मिक उन्माद की दुष्टता मस्त हाथी की भाँति झूमती है। साम्प्रदायिकता धर्म की ठेकेदारी और संरक्षण ले लेती है तथा धर्म के बाहरी रीति-रिवाजों की ही सच्चे धर्म के रूप स्थापना करती है। वह जन्मगत जाति-पाति की श्रेष्ठता को मुख्य रख कर धर्म की वास्तविकता से मुख मोड़ लेती है। फ़िर्क़ेबन्दी के पुजारी, केवल बाहरी आडम्बरों पर मोहित हो कर, यह मान बैठे हैं कि रीति-रिवाज ही सब-कुछ हैं तथा अन्तिम आदर्श हैं। वे इन्हें छोड़ कर और सब-कुछ गुमराही समझते हैं। प्रत्येक सामाजिक धर्म, जो कि मनुष्य की आत्मिक मुक्ति के लिये शुरू हुआ था, एक अच्छा ख़ासा जेलखाना बन जाता है जिसके परे कुछ सोचना या समझना बड़ा पाप माना जाता है। अपने-अपने पिछले महापुरुषों तथा धर्म-पुस्तकों के लिये इज्ज़त तथा औरों के लिये नफ़रत पैदा हो जाती है। दिली और दिमाग़ी गुलामी का फन्दा गर्दन में पड़ जाता है और धार्मिक अभिमान तथा संकीर्णता का परदा आँखों पर गिर जाता है। मनुष्य अपनी सीमाएं आप ही बना लेता है और कुएं के मेंढक की भाँति, उनसे परे कुछ भी दृष्टि में नहीं ला सकता। धर्म-शास्त्रों के रीति-रिवाज जिन्हें उनके प्रवर्तकों ने मालिक के प्रेम, बाहिरी त्याग और रूहानी आज़ादी की नींव पर स्थिर किया था, आज सम्प्रदायवाद के ठेकेदारों के हाथों में आकर हथकड़ियों और बेड़ियों का काम दे रहे हैं तथा भिन्न-भिन्न धर्मानुयाइयों में विद्वेष और वैर का कारण बन रहे हैं। वे सच्चे और सर्व-व्यापी धर्म से दूर हैं। मनुष्य-योनि का उद्देश्य परमात्मा से मिलना, उसके प्रेम और स्मरण में मगन रहना और उससे प्यार करके उसकी रचना से प्यार करना था, किन्तु इसके विपरीत परमात्मा से हट कर, प्रेम से शून्य हो, मनुष्य-मनुष्य का दुश्मन बन रहा है। वे रब्ब के आशिक अथवा परमेश्वर के भक्त बनने के स्थान पर दीनदार या धर्मान्ध (दीन-धर्म के ठेकेदार) अर्थात् अच्छे-ख़ासे दुनियादार बन रहे हैं। संसार क्या है ? उस परमपिता से विमुख होना, उसे छोड़ कर किसी और से प्रेम करना या किसी और की वार्ता सुनाना है।

"दानी के चीस्त दुनिया दिल अज़ ख़ुदा बरीदन,
जुज इश्के ऊ गुज़ीदन जुज़ ज़िक्रे ऊ शुनीदन ॥"

तुम रब्ब के आशिक़ बनो। जिनकी आन्तरिक आँखें खुलती हैं वे इस हालात को समझते हुए इन से (बाहरी बंधनों से) अलग ही रहते हैं।

इस बारे में साँई बुल्लेशाह फ़र्माते हैं—

"धरमशाले धड़वाई रहिंदे, ठाकुर द्वारे ठग।
विच मसीताँ कसबी रहिंदे, आशक रहिन अलग ॥"

यदि धर्मोपदेशकों के उपदेशों के मुख अर्थ अथवा मंतव्य को पाना चाहते हो तो दुनियावी धार्मिकता से मुखमोड़ कर सच्चे मालिक से मिलो।

"गर हमे ख्वाहीद पैवस्तर बा राए वाइज़ाँ।
बायद अज़ दुनिया-ओ दीं करदन शुमार-इनकिता।।"

धर्म का प्रारम्भ तथा नकद धर्म

धर्म हमारे अन्दर शुरू किस प्रकार होता है ? जब मनुष्य यह महसूस करता है कि उसकी ज़िन्दगी अपने आप में स्वतन्त्र नहीं, तब वह जीवन के भेद की खोज में लगता है तथा इसके "क्यों और किस प्रकार" को जानने का प्रयास करता है। वह जानना चाहता है कि क्या कोई और भी शक्ति है जो इस जीवन का आधार है, यदि है तो वह उसे पाना चाहता है। जब धर्म की यह खोज उस के अन्दर जाग उठती है तो वह बाहरी मत-मतान्तरों को आदर्श नहीं मानता और न ही किसी धार्मिक कानून को पूर्ण अथवा मुकम्मल समझता है। वह उस महान् तत्व की खोज में लगता है, जो क्या अमीर, क्या ग़रीब, क्या धार्मिक नेता और क्या गली-कूचों के साधारण व्यक्ति, सभी के अन्दर छिपा हुआ है तथा जिसकी झलक हमें प्रार्थना या 'अरदास' और ध्यान में लगे मनुष्य के मुख पर नज़र आती हैं। इससे और किसी महान् शक्ति का अस्तित्व प्रकट होता हैं। पर उसको जानने के पूर्व स्वयं को पहचानने की आवश्यकता हैं। अपने आप को जान लेना सब कुछ जान लेने का क, ख, ग हैं। आम लोग बाहरी चिन्ह-चक्रों के धारण करने को और किसी एक अथवा दूसरे मत को मानने को धर्म समझते हैं, पर परमार्थ का सम्बन्ध आत्मा के साथ है। आत्मा क्या वस्तु है, उसको जानकर, उसका आधार जो महान् आत्मा या सारे संसार की आत्मा है उसमें आत्मा को मिला देने का नाम सच्चे अर्थों में धर्म है। आत्मा आवरणों (परदों) में छिपी होने के कारण परतन्त्र है। हमें उन पर्दों को उतार कर उसे मुक्त करना है। वह पारब्रह्म (चेतन लोकों, स्थूल, सूक्ष्म और कारण के पार) में पहुंच कर ही मुक्त हो सकती है। इस प्रकार आत्मा रूपी बूंद को मालिक से मिला देने का नाम धर्म है। परमार्थ, धर्म की जान है तथा अन्तर्मुखता इसका जौहर है। संत-महात्मा संसार को इस आन्तरिक धर्म का उपदेश देते हैं। यद्यपि यह जीवन का आधार है, इसके बारे में आम लोग नहीं जानते। इसकी झलक इन्द्रियों और बुद्धि के स्थिर होने पर ही आ सकती है। यह मन, इन्द्रियों तथा सोच-विचार का विषय नहीं। यह कभी विचार की सीमा में आने वाली वस्तु नहीं। कोई भी बौद्धिक चतुराई अथवा सयानापन हमें उस तक नहीं पहुंचा सकता, चाहे लाखों करोड़ों विचार और चतुराइयें

की जायें–

"सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।।" (जपुजी–१)

"सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि।।" (जपुजी–१)

सोच-विचार से उसे जानना उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार शराब से प्यास बुझने की आशा करना। सेंट अगस्टीन समुद्र के किनारे बैठा अपनी डी ट्रिनिटेट नामक पुस्तक के बारे में विचार कर रहा था। उसने एक बालक को देखा जो सीप में समुद्र का पानी भर-भर कर रेत में अपने बनाये हुए एक छोटे खड्डे से डाल रहा था। प्रश्न करने पर उस बालक ने उत्तर दिया कि वह सारे समुद्र के जल को उस खड्डे में डाल कर समुद्र को खाली कर देना चाहता है। सेंट अगस्टीन ने उस बच्चे से कहा कि तेरा परिश्रम सब व्यर्थ जायेगा। बच्चे ने जवाब दिया कि उसकी मेहनत का कुछ न कुछ फल मिलने की आशा है, परन्तु, उस महान् आत्मा को, जो सबका आधार है, बुद्धि द्वारा समझने का उसका (अगस्टींन का) प्रयास बिल्कुल व्यर्थ और असम्भव है।

परमात्मा सचमुच ऐसी शक्ति है जिसके आसरे सब ज्ञान और विद्याएँ हैं। संत-महात्मा आत्मा और परमात्मा को अनुभव द्वारा समझने पर ज़ोर देते हैं। वे नकद धर्म सिखाते हैं, जिसका अनुभव इस जीवन में ही हो सकता है और हमारी आन्तरिक आँखें जिसके प्रकाश को देखने और हमारे कान जिसकी मधुर वाणी को सुनने के योग्य हो सकते हैं।

"बख्वाहिद चश्म सरे माशूक दीदन।
कलामश रा बगोशे ख़ुद शुनीदन।।"

सच्चा धर्म वह अनुभव है जिसके द्वारा इसी जीवन में परमेश्वर के अस्तित्व पर दृढ़ विश्वास आ जाये, महा आनन्द और पूर्णता प्राप्त हो, यह संसार उसी का रूप प्रतीत हो और हमारे अन्दर उसकी सेवा का रंग चढ़े। मरने के बाद इन सबकी प्राप्ति का क्या भरोसा है? इसको बर्गसन ने 'खुला मज़हब' कह कर वर्णन किया है। इसके विपरीत 'उधारी धर्म अथवा मज़हब' है जिसे बर्गसन ने 'बन्द मज़हब' कहा है, जो रीति-रिवाजों का केन्द्र है। मौत के बाद उसके फल की प्राप्ति का वर्णन किया जाता है, वह ज़बानी जमा-खर्च मात्र है, उसका क्या विश्वास है। आज नकद या खुले धर्म की आवश्यकता है, जिसकी रूहानी लहरों में स्नान करके आत्मा नव-जीवन प्राप्त करे और निहाल-निहाल हो जाये। मालिक और परमार्थ किसी जाति अथवा धर्म की सम्पत्ति नहीं हैं।

प्रत्येक मनुष्य आत्मा, मन और शरीर का बना हुआ है, अतएव वह

आत्मिक, मानसिक और शरीरिक हो सकता है। जिस मनुष्य की वृत्ति आत्मा की ओर है वही आत्मिक पूर्णता की शोभा देख सकेगा। शरीर के दस औज़ार या यन्त्र हैं,पाँच कर्म-इन्द्रियाँ और पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ, जिनके सम्बन्ध केवल शरीर के कर्मों के साथ हैं। दिल के चार औज़ार हैं–चित्त (चिन्तन या ख्याल करने वाला यन्त्र), मन (मनन करने वाला यन्त्र), बुद्धि (विचार करने का यन्त्र) और अहंकार (दृढ़ता और हौमै अथवा ख़ुदी का यन्त्र)। इनका सम्बन्ध अक्ल, समझ, तमीज़ (विवेक) करने और पहचानने के साथ है, ज्ञान इनका गुण है। आत्मा का यन्त्र सुरत अथवा ध्यान है। उसका गुण एकाग्रता है। कर्म शरीर से होते हैं,विवेक चित्त से होता है और आनन्द आत्मा द्वारा। जब ये तीनों (शरीर, चित्त और आत्मा) समता में आकर एक-स्वर हो जाते हैं तो जीवन आनन्दमय और आदर्श बन जाता है। व्यायाम करने वाला मनुष्य पहलवान बन जाता है, सैंकड़ों मनुष्य उसका मान करते हैं। चित्त अथवा अक्ल का व्यायाम करने वाला व्यक्ति अक्लमंद और चतुर हो जाता है, हज़ारों आदमियों की दृष्टि में ऊंचा हो जाता है। आत्मा का व्यायाम (अभ्यास) करने वाला मनुष्य लाखों पर छा जाता है, सब उसका आदर करते हैं, वह हर समय प्रसन्न रहता है। यह कर्म, ज्ञान और उपासना की असलियत है। अन्तर और बाहर शब्द का सुनना है, यही प्रणव का प्राणों द्वारा गान है, इलहाम (आकाशवाणी) का सुनना है, यही आत्मा का आनन्द है। धुन में स्वाभाविक आकर्षण है, इस के द्वारा मन स्थिर हो जाता है। यही नकद धर्म है, इसी को सुरत-शब्द योग कहा गया है जो केवल गुरु की दीक्षा द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

बाहरमुखी और अन्तरमुखी धर्म

साइन्स प्रत्यक्ष जगत का विज्ञान है, धर्म-शास्त्रों के नियम शारीरिक रहन-सहन व आचार-व्यवहार के विषय हैं और परमार्थ, आत्मा का तथा घट के अन्तरी खण्डों-ब्रह्माण्डों का ज्ञान है, वह मालिक का अनुभव करने तथा उसके साथ अभिन्न होने का विज्ञान है जो कि एक अवर्णनीय और निराला तथ्य है। परमार्थी धर्म (सन्तों का मत) कमाई (अभ्यास) और परमात्मा के दर्शन का विषय है। वह मनुष्य-जीवन में परिवर्तन और आत्मोन्नति की प्राप्ति का नाम है। वह बौद्धिक सम्पदा के विकास का नाम नहीं है। वह तो हमारी आत्मा के पूर्ण पुरुष के व्यक्तित्व में जाग उठने और सत्य में प्रवेश करने का नाम है। संत-मत को धारण करके आत्मा प्रफुल्लित होती है, शान्ति और आनन्द प्राप्त करती है। जिन्हें यह अनुभव है वे मालिक

की निकटता का अनुभव करते हैं। उन्हें मालिक के अस्तित्व के लिये तर्क-युक्त (दलीली) प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। चाहे यह मालिक का अनुभव मन और तर्क की पहुँच से परे है, फिर भी यह तर्क-विरुद्ध नहीं है। जो मालिक में मग्न रहते हैं वे भी उसका वर्णन और उसकी प्रशंसा पूर्णतया नहीं कर सकते। उसके भेद, वर्णन की सीमा से परे हैं, उन्हें बाहरी आँखें देख नहीं सकतीं। परमात्मा के अनुभव की प्राप्ति के लिये पूर्ण शान्ति का आधार चाहिए। लम्बी-चौड़ी चर्चाएं हमें उससे दूर ही रखती हैं। वह, तर्क, सोच-विचार और बौद्धिक चतुराइयों से परे की वस्तु है। वह आत्मा पर प्रकाश की भान्ति प्रकट होना है।

बाहरी ज्ञान हक़ीक़त (वास्तविक तत्व) से अनभिज्ञ है। हम बाहरी विद्याओं के ज्ञान में फंसे पड़े हैं तथा आन्तरिक तत्व के ज्ञान की ओर से पूर्णतया निश्चिन्त हैं। हम अपने शारीरिक दुःखों, तापों, पीड़ा आदि को दूर करने का इलाज तो करते हैं, पर यह कभी नहीं सोचते कि हमारे मन का नीचे की ओर का बहाव किस प्रकार रुक सकता है। हम जन्म से लेकर मृत्यु तक अपना जीवन खाने, पीने और सोने में बिता देते हैं, किन्तु अपने आप को तथा अपने आधार परिपूर्ण परमेश्वर को नहीं जानते। हम केवल बाहरी अथवा स्थूल चीज़ों में फंसे रहते हैं, उस मालिक को जो अन्तर में मौजूद है हम कैसे पा सकते हैं ?

"नदरी आवै तिसु सिउ मोहु ॥ किउ मिलीऐ प्रभ अबिनासी तोहि ॥"

(बिलावलु म. ५, ८०१-७)

जो मनुष्य देखने के लिए बाहरी आँखों, सुनने के लिए बाहरी कानों और बोलने के लिए बाहरी रसना के अधीन हैं वे (परमार्थ की दृष्टि से) मुर्दा हैं।

मालिक को हम अपने अन्दर जाकर ही पा सकते हैं। अतएव हमें अपने अन्दर ही दृष्टि डालनी होगी, वहीं से आनन्द की सम्पदा प्राप्त हो सकती है। वह मालिक नाम और शब्द रूप होकर सर्वत्र व्याप्क है। पर हम उसे तब तक नहीं सुन सकते जब तक कि बाहरी कोलाहल से हट कर आन्तरिक सुन्न अथवा खामोशी की एक-रूपता में प्रवेश नहीं कर लेते। जब हम अन्दर जाते हैं हम बिना पैरों के चलते हैं, बिना हाथों के कार्य करते हैं, बिना नेत्रों के जगत निहारते हैं और बिना कानों के सुनते हैं।

"अखी बाझहु वेखणा विणु कंना सुनणा ॥
पैरा बाझहु चलणा, विणु हथा करणा ॥

जीभै बाझहु बोलणा, इउ जीवत मरणा ।।
नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा ।।"

(माझ वार म. २, १३९-२)

तुलसीदास जी रामचरित-मानस के बालकाण्ड में यही फ़र्माते हैं :—

"बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना ।।" (११७-३)

सबसे पहले हमें अपने आपको जानना आवश्यक है। यह तभी हो सकता है जब हम अपने ध्यान को बाहर भटकने से रोकें और अन्तरी दुनिया में प्रवेश करके आन्तरिक शान्ति और मौन की धरती बनाएं। तभी आत्मा अपने परमात्मा को देख सकती है। परमार्थ का मुख्य ध्येय आत्मा और परमात्मा का मिलाप है। महात्मा बुद्ध फ़र्माते हैं कि वास्तविक तत्व की ऊंचाइयों को हम अपने अन्दर ही पा सकते हैं। जर्मन दार्शनिक शोपनहावर भी यही कहते हैं कि आनन्द का स्रोत मनुष्य को अपने अन्दर ही मिल सकता है। "ख़ुदा की बादशाहत हमारे अन्दर है।" (अंजील)

आन्तरिक यात्रा के लिए न घर-बार और न काम-काज छोड़ने की आवश्यकता है और न जाति या धर्म के परिवर्तन की। यह हम साँसारिक व्यवहार करते हुए भी कर सकते हैं। इसकी युक्ति पूरे सतगुरु के पास से प्राप्त होती है।

"नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति ।।
हसंदिआ खेलदिआ पैन्हंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकति ।।"

(गूजरी वार म. ५, ५२२-१०)

संसार को छोड़ कर जंगलों में भटकने की आवश्यकता नहीं। स्वयं अपने अन्दर स्थिर होना ही वास्तविक एकान्त है।

"सो इकाँती जिसु रिदा थाइ ।।" (बसंतु म. ५, ११८०-१७)

ऐसे व्यक्ति भीड़-भाड़ में भी एकान्त पा लेते हैं। हम जब चाहें अपने अन्दर एकान्त में जा सकते हैं। उस जैसा मौन, वैसी शान्ति और स्थिरता और किसी स्थान पर नहीं मिल सकती। बाहर के जंगल और नदियों के किनारों पर हम एकान्त वास नहीं पा सकते जब तक कि हमारा चित्त ही एकाग्र न हो।

धर्म दो भागों में बाँटा जा सकता है, एक सामाजिक और दूसरा आत्मिक। सामाजिक धर्म का उद्देश्य केवल किसी विशेष समाज या श्रेणी की पुष्टि और विकास है। मिलने-जुलने अथवा आचार-व्यवहार के नियमों का सुधार, पुरातन स्मृति-चिह्नों व त्योहारों को मानना और भजन-बन्दगी

करना, यह प्रवृत्ति का मार्ग है। पर आत्मिक धर्म का कार्य केवल रूहानी है; वह यह जानना है कि आत्मा क्या है और उसका मालिक के साथ क्या सम्बन्ध है। उसका ध्येय केवल आत्मा की उन्नति करना और उसको मालिक के साथ जोड़ना है, ताकि जीव अपने जीवन-काल में ही सब बन्धनों से मुक्त होकर ईश्वर का अनुभव प्राप्त कर ले तथा उसमें मिलकर उस से अभिन्न हो जाये।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज का आधार आत्मिक उन्नति पर है। जिस प्रकार आत्मा के होने से ही शरीर फलता-फूलता है, आत्मा के बिना शरीर किसी काम का नहीं होता, उसी प्रकार आत्मिक उन्नति से समाज शानदार बनता है। किन्तु आत्मिक उन्नति के अभाव से समाज संकीर्णता, अभिमान और स्वार्थ का केन्द्र हो जाता है जो मतों के आपसी विवाद, विद्वेष और झगड़ों का कारण है।

आज समाजिक धर्मों की कमी नहीं, यदि कोई कमी है तो वह आत्मिक-धर्म की है। मनुष्य के लिए अस्लियत को समझना आवश्यक है। यदि वास्तविकता (अस्लियत) का बोध हो जाए तो वह चाहे गृहस्थ में रहे चाहे विरक्त में कोई फ़र्क नहीं पड़ता, सन्तों का मत केवल रूहानी है। वे किसी न किसी समाज में निर्वाह करते हैं, पर उनका असली उद्देश्य 'अचेत' अथवा ग़ाफिल रूहों को चेताना है, सुरत-शब्द-योग की कमाई (अभ्यास) है। इसलिए वे धार्मिक और जाति सम्बन्धी झगड़ों-बखेड़ों से दूर-दूर ही रहते हैं। वे न तो किसी नवीन धर्म अथवा जाति की स्थापना करते हैं, न किसी पुराने को गिराते हैं।

सब धर्मों के मूल अथवा बुनियाद में रूहानी शिक्षा (सुरत-शब्द मार्ग) का उपदेश है, जो लगभग गुप्त होता जा रहा है, केवल टेक ही टेक बाकी रह गई है। संतों की शिक्षा किसी धर्म-शास्त्र अथवा कर्मकाण्ड की रूढ़ियों और बन्धनों से सम्बन्ध नहीं रखती। वह आत्मा-सम्बन्धी विद्या है। वह उस आत्मिक आनन्द को पाना है जो सत्सङ्ग द्वारा प्राप्त होता है, सिखाया-पढ़ाया नहीं जा सकता। उस आत्मिक आनन्द की विशेषता उसी में मग्न रहना है, सुरत उसमें स्थिरता पाती है। उसके अडोल हो जाने पर काल और माया का ख़याल तक पास नहीं फटकता। संतों की शिक्षा 'इल्मे-लदुन्नी' अथवा आत्म-ज्ञान है जो बग़ैर लिखे-पढ़े प्राप्त होता है। संतों की जीवनियों पर दृष्टि डालो। उन्हें आन्तरिक अथवा आत्मिक ज्ञान की परिपूर्णता प्राप्त थी। सब संतों का मत, चाहे वे किसी जाति अथवा देश में हुए हो, एक ही रहा है। उसमें सन्देह अथवा भेद की सम्भावना नहीं। संत लम्बे चौड़े रीति

रिवाज और कर्म-काण्ड के झंझटों की ओर ध्यान नहीं देते। इनका ध्येय जीवों को आत्मिक शिक्षा देकर मालिक के साथ जोड़ना है। वे संसार को मालिक से विमुख करने अथवा हटाने के लिए नहीं आते।

"तू बराए वसल करदन आमदी,
ने बराए फ़सल करदन आमदी।" (मौलवी रूम)

यह शिक्षा प्रकृति के अन्य प्रसादों (प्रकाश, हवा, जल आदि) की भाँति सबके लिये मुफ्त है।

विज्ञान और धर्म

आम तौर पर वैज्ञानिकों की धारणा है कि धर्म केवल भ्रम अथवा अंधविश्वास ही है और मनुष्य धर्म के बग़ैर भी उतने ही आराम से रह सकता है जितना कि धर्म का पालन करते हुए। नास्तिक लोगों का कहना है कि धर्म मनुष्य के लिए अफ़ीम की भान्ति है। इसके विपरीत आस्तिक यह कह कर प्रसन्न होते हैं कि विज्ञान ने सर्वनाश के शैतानी अस्त्र पैदा किये हैं तथा संसार में झगड़े और बेचैनी को बढ़ाया है। वैज्ञानिक यह मानते हैं, "मनुष्य के अन्दर मन है और यदि इसका भली प्रकार ख्याल रखा जाये तो आत्मा (यदि इस प्रकार की कोई वस्तु हो तो) अपनी चिन्ता आप ही कर सकती है।" उनकी प्रार्थना कुछ इस प्रकार की होती है कि "हे मालिक, (यदि कोई है तो) मेरी आत्मा (यदि कोई है तो) की सम्भाल कर।" उन्हें आत्मा और परमात्मा दोनों के बारे में शंका है, उनके अस्तित्व का उन्हें पक्का विश्वास नहीं।

संतों-महात्माओं के लिये आत्मा एक सच्ची हस्ती है जो चंचल मन और शरीर—जो मिट्टी का चोला है—के बन्धनों में फंस गई है। उनके लिये जीवन का आदर्श आत्मा को इन बन्धनों से मुक्त कर के परमेश्वर के साथ जोड़ना है, यही उनके लिये सच्चा तथा आप-बीता अनुभव है। आत्मा की इन बन्धनों से स्वतन्त्रता को वे मुक्ति कहते हैं। बहुत से लोग मुक्ति का वास्तविक अर्थ नहीं समझते। कई तो पत्थर की भाँति जड़ हो जाने को मुक्ति कहते हैं और कई बूंद के समुद्र में मिल जाने को, ज्योत के ज्योति में समा जाने की मुक्ति कहते हैं। वास्तव में दिल अथवा मन से शरीर और शरीर के सम्बन्ध का नाम बन्धन है तथा उस सम्बन्ध के न रहने का नाम मुक्ति है। आसक्ति में अनासक्ति तथा अनासक्ति में आसक्ति रखने की गति संतों की मुक्ति है। परमार्थ की प्रथम सीढ़ी गुरु-भक्ति है, फिर नाम की कमाई है जिससे कि मुक्ति प्राप्त होती है। यह जीवन-मुक्ति की वह स्थिति है जिसमें अस्लियत के मुकाम अर्थात् धुर धाम की, जो आत्मा का

निज-धाम है, प्राप्ति होती है।

हाफ़िज़ा खुल्दे बरीं ख़ानाए मौरूसे मा अस्त।

अर्थात्, ऐ हाफ़िज़! सचखण्ड हमारा मौरूसी (पैतृक) घर है।

यदि विज्ञान और धर्म के फ़ायदों और उनकी ख़ास-ख़ास सीमाओं पर गहराई के साथ विचार किया जाये तो उन दोनों का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध मालूम देगा। जीवित वस्तुओं (जिनमें मनुष्य भी शामिल हैं) पर वातावरण के दो प्रभाव होते हैं--एक आन्तरिक और दूसरा बाहरी--जिनकी सीमा नहीं है और जो सारे संसार में समान-रूप से व्यापत हैं। मनुष्य के अन्दर बुद्धि और तमीज़ या विवेक है जो अन्य जीवों में नहीं है। अपनी बुद्धि द्वारा वह वातावरण पर अधिकार पाता है।

जब तक मनुष्य के अन्तरी और बाहरी सम्बन्ध एक-रस रहते हैं, वह खुश रहता है। यदि सब कुछ हमारी इच्छानुसार होता रहे, हम प्रसन्न हैं। पर देखने में आता है कि यह एक-रस रहने की हालत अधिक समय तक नहीं रह सकती क्योंकि अन्दर और बाहर के सम्बन्ध स्थिर नहीं हैं, दोनों ही बदलते रहते हैं। मनुष्य इस एकता की हालत को फिर से पाने के लिए दो प्रकार से प्रयत्न करता है। एक तो बाहरी पदार्थों पर इस प्रकार अधिकार पाकर कि उसकी आवश्यकताएं जब भी वह चाहे पूरी हो सकें और दूसरे, अन्तर की उकसाहटों, तृष्णाओं को इस प्रकार वश में करके कि बाहर के सदा बदलने वाले वातावरण का उसके ऊपर असर अथवा प्रतिक्रिया न हो सके। पहला प्रयास विज्ञान के दायरे में है तथा दूसरा धर्म का काम है। विद्युत-अणुओं से लेकर तारों तक वे सब पदार्थ जिसका वर्णन हम बाहरी शब्दों में कर सकते हैं, विज्ञान की सीमा के अन्दर हैं। हमारे भाव और मानसिक विकार तथा बाहर के वे सब सामान भी, जो हम पर प्रभाव डालते हैं, विज्ञान के दायरे में ही आते हैं। बाहर के विज्ञान में हम प्रत्येक वस्तु को इन इन्द्रियों (आँखें, कान, नाक आदि) द्वारा देख, सुन और सूंघ सकते हैं, पर अन्दर की दुनिया निराली है, वहाँ हमारी इस प्रकार पहुँच नहीं। बाहर की आँखें मनुष्य के अन्दर के वृत्तान्तों को देख नहीं सकतीं। दूसरे, विज्ञान के बाहरी पदार्थों में मात्रा का सवाल है। उदाहरणार्थ, दो आधी रोटियें मिलाने से एक पूरी रोटी बन जाती है, पर दो आधी बुद्धि वाले मिल कर एक पूरी बुद्धि वाला नहीं बन सकता। तीसरे, विज्ञान की खोज में हम बाहर की सामग्री से बहुत कुछ सहायता ले सकते हैं और अनेक व्यक्ति उनके द्वारा प्रयोग करके अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। विज्ञान के अनुभवों और परिमाणों

को हम बाहर प्रत्यक्ष देख सकते हैं। बाहर की दुनिया में विज्ञान के विशेष महत्व के ये ही मूल कारण हैं। विज्ञान में नित्य नये तजुर्बे हो रहे हैं तथा और होते रहेंगे। इनका कोई अन्त नहीं।

धर्म का ध्येय धुर-धाम पहुँचना है, और ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने उस तक रसाई अथवा गति प्राप्त की है। यह आदर्श आत्मा का अपने अन्दर निरन्तर आनन्द, पवित्रता और स्वयं पर अधिकार पाना है। आनन्द का वह भंडार मनुष्य के अपने अन्दर है जिसे पाकर वह आन्तरिक उकसाहटों पर काबू पाता है और उसकी खुशी का बीमा हो जाता है, चाहे बाहर की दुनिया में उसे सिर छिपाने के लिये भी स्थान न हो। धर्म के मार्ग में बहुत-सी रुकावटें हैं। सब इन्सान, जिनमें संत-महात्मा भी हैं, मरते हैं। मृत्यु के बाद उनके सन्देशों और उपदेशों में बहुत-सी मनघड़न्त बातें मिला कर उन्हें खींच-तान द्वारा तोड़-मोड़ दिया जाता है। उनकी निजी रसाई (पहुँच) और अनुभवों का दूसरे लोग विज्ञान के आविष्कारों और यन्त्रों की भाँति लाभ नहीं उठा सकते और न हमारे पास इस योग्यता का मसाला है जिसके सहारे संतों की रूहानी रसाई और अनुभवों को हम बाहर औरों के सामने रख सकें, जिस प्रकार कि रेडियो से हम सारे संसार से वार्ता कर सकते हैं अथवा हवाई-जहाज़ पर सवार हो हम सारे जल-थल, संसार पर उड़ सकते हैं।

किसी संत की गति प्राप्त करने के लिये हमें उनकी शिक्षानुसार चलना पड़ता है। यह शरीर संतों की प्रयोगशाला है, हमें इसके अन्दर जाना और संतों के तजुर्बों को अपने अनुभव में लाना पड़ता है। आन्तरिक दुनिया का आम तौर से सब को एक साथ सामूहिक अनुभव नहीं होता। प्रत्येक आत्मा अकेले ही अपने अन्दर उस अनुभव का रस लेती है। अतएव, रूहानियत निश्चयपूर्वक निजी अथवा व्यक्तिगत अनुभव है। इसलिये, धार्मिक-जीवन का प्रमाण अनगिनत विशाल मन्दिरों, मसजिदों, गुरुद्वारों और गिरजों द्वारा नहीं हो सकता और न ही धर्म-पुस्तकों अथवा नियमों का होना उसकी प्रगति का सबूत है। इसका सबूत तो उन ज़िन्दा पुरुषों की गिनती है, जिन्हें उस परम तत्व मालिक का निजी अनुभव हुआ है तथा हर समय हो रहा है, जिसे पा कर उनकी दृष्टि में बाकी सब चीज़ें तुच्छ प्रतीत होती हैं।

उस तथ्य के सिद्धान्तों की विधि उसी प्रकार नियमों के अनुसार है जिस प्रकार विज्ञान के सिद्धान्त हैं। उसकी प्राप्ति के लिए जिज्ञासु को सच्चे व पवित्र जीवन की आवश्यकता है। उसमें इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह चैतन्य होकर अपने मन को बाहरी विघ्नों, अन्दरूनी उकसाहटों, प्रलोभनों तथा आस-पास के वातावरण से उत्पन्न उतेजनाओं से हटा सके। यह ठीक

उसी प्रकार है, जिस प्रकार, विज्ञान के किसी प्रयोग करने के पूर्व हम यह तसल्ली कर लेते हैं कि हमारे औजार साफ़-स्वच्छ हैं तथा बाहर की किसी अन्य वस्तु का उन पर कोई प्रभाव नहीं। हम बाहर के मेल-जोल के जीवन को उस समय छोड़ कर उस विज्ञान की प्रयोगशाला में चले जाते हैं और सब दरवाज़े बन्द कर लेते हैं ताकि हम पूर्ण एकाग्रता के साथ प्रयोग तथा अनुभव कर सकें।

यह देखा गया है कि सब धर्मों के लोग पुराने रीति-रिवाजों में जकड़े रहने को गौरव अथवा मान समझते हैं। पुराने सिक्कों को, चाहे वे कितना ही मूल्य अथवा ऐतिहासिक महत्व क्यों न रखते हों, नई टकसाल में ढालना पड़ता है ताकि वे प्रचलित राज्य-काल में चल सकें। अतएव आज यह अत्यन्त आवश्यक है कि बीसवीं सदी के मनुष्य के आगे ऐसी तालीम रखी जाये जो बाहरी आवरणों, रंग-रूपों और छोटी-छोटी बातों को छोड़ कर महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान हो, जो पूर्ण और यथार्थ हो। आजकल भिन्न-भिन्न धर्मों के लोगों में जो संकीर्णता और शत्रुता प्रकट हो रही है, वह उन धर्मों के चलाने वालों की शिक्षा का नतीजा नहीं है, वह तो उनकी सच्ची शिक्षा से अनभिज्ञता (ना-वाकफ़ियत), स्वार्थ, अविद्या और धार्मिक अभिमान के फल-स्वरूप है।

बुत-परस्ती (मूर्ति-पूजा) और खुदा-परस्ती (ईश्वर-पूजा)

मनुष्य आत्मा (चेतन) और शरीर (जड़) का मेल है। जहाँ तक मनुष्य जड़ है, जड़* तत्व के नियम उस पर लागू होंगे। जहाँ तक वह सजीव है उस पर सजीव† तत्वों के नियम लगेंगे और जहाँ तक वह चेतनता रखता है, उस पर चेतन‡ जीव-जन्तुओं के नियम लागू होंगे जो उसे अपने पालन-पोषण और आराम के लिए यत्न करने को प्रेरित करते हैं। जब तक मनुष्य का इनके साथ सम्बन्ध है, वह दुःख रूप बना रहेगा। जब इनसे ऊपर आत्मा से सम्बन्ध रखेगा, वह सुख स्वरूप हो जायेगा। कबीर साहिब फ़र्माते हैं—

"देह धर सुखीया कोई न देखा, जो देखा सो दुखीया है।।"

इसी विषय में महात्मा बुद्ध का कथन है कि जिस्मानियत की ज़िन्दगी दुःख का रूप है।

हर समय शरीर को ही बनाने संवारने और उसके पालन-पोषण में लगे रहना वास्तव में बुत-परस्ती अथवा मूर्ति-पूजा है। इस शरीर के अन्दर

*जड़ के नियम:—भारशक्ति, आकर्षण शक्ति, जुड़ने की शक्ति, अलंघनीयता, प्रवाह शक्ति आदि।

†सजीव शरीर के नियम:—पालन-पोषण, बढ़ना, विकास, आत्म विस्तार आदि।

‡चेतन प्राणी के नियम:—भूख, प्यास, बेचैनी का अनुभव करना।

आत्मा के बनाव-शिंगार और मालिक के साथ उसे जोड़ने का नाम परमेश्वर की आराधना या ख़ुदा-परस्ती है। पर हम इस ओर से बिल्कुल बेसुध हैं, इसका हमें ख़्याल ही नहीं। हमें यह पता ही नहीं कि आत्मा का पालन तथा उसका शिंगार किस प्रकार होता है। शरीर से पहले आत्मा का शिंगार आवश्यक है। शरीर घर है और आत्मा उसकी निवासिनी है। केवल घर की सफ़ाई और बनाव-शिंगार किस काम के यदि उसमें रहने वाला भूखा, प्यासा और अचेत पड़ा हो। पहले घर में रहने वाला हो, उसके बाद ही घर की ज़रूरत है। हम स्वयं (आत्मा) को भूल कर (शरीर) के मोह-प्यार में इतने रच गये हैं कि हम इसकी दीवारों और छत्त का रूप बन चुके हैं। घर में रहने वाला स्वयं ही घर बना पड़ा है। यदि हम इस घर को सुन्दर देखना चाहते हैं तो इसमें रहने वाले को सुन्दर बनाना चाहिए। पर इस घर को कौन ठीक रख सकता है? यह घर प्रति-दिन बदलता रहता है और पुराना तथा शिथिल हो रहा है। यह सदा एक-रूप नहीं रह सकता। इसे एक दिन छूट जाना है। तुम आत्मा हो, शरीर नहीं। शरीर नश्वर है, वह हमेशा रहने वाला नहीं। शरीर की उचित देख-भाल करते हुए, इसके अन्दर अपनी आत्मा की बैठक पर (जो दोनों भृकुटियों के बीच, आँखों के पीछे है), एकत्रित होकर बैठ जाओ और अपना सम्बन्ध, किसी पहुंचे हुए महात्मा से शिक्षा लेकर, मालिक के साथ जोड़ लो।

"कोई जनु हरि सिउ देवै जोरि॥
चरन गहउ बकउ सुभ रसना दीजहि प्राण अकोरि॥"
(जैतसरी म. ५, ७०१-१६)

तभी हमारी आत्मा मालिक का रंग लेकर सुन्दर और रूहानी हो सकेगी। पहले अपनी आत्मा को भोजन देना चाहिए, बाद में इस शरीर अथवा काया को। इस प्रकार हमारे अन्दर रूहानी गुण प्रकट हो जायेंगे। इसलिए आवश्यक है कि सत्संग अर्थात् सत्य का संग या ऐसे जीवित पुरुष की संगति करो जिसकी आत्मा परमात्मा में मिल कर परम चेतन हो चुकी हो। ऐसे आध्यात्मिक पूर्ण-पुरुष की संगति करो और अपनी आत्मा का तार मालिक-कुल परिपूर्ण के साथ जोड़े रखो।

काया वही सुन्दर है जिसमें सुरत अपने पति-परिपूर्ण, मालिक-कुल, शब्द या नाम के साथ वास कर रही हो। उस सच्चे पति के साथ मिलाप करने पर इसका सुहाग सदा के लिए स्थिर हो जाता है। शरीर छूटे या रहे इसकी कोई चिन्ता नहीं रहती। यह काया का भेद सतगुरु की सेवा करने या गुरुमुख बनने से ही प्राप्त होता है, वह बौद्धिक चतुराइयों का

विषय नहीं। यह दात मालिक जिसे चाहे उसे देता है।

"काइआ कामणि अति सुआल्हिउ पिरु वसै जिसु नाले ॥
पिर सचे ते सदा सुहागणि गुर का सबदु सम्हाले ॥"
(सूही म. ३, ७५४-५)

"गुरमुखि होवै सु काइआ खोजै होर सभ भरमि भुलाई ॥
जिसनो देइ सोई जनु पावै होर किआ को करे चतुराई ॥
... ...
सा काइआ जो सतिगुरु सेवै सचै आपि सवारी ॥
विणु नावै दरि ढोई नाही ता जमु करे खुआरी ॥
नानक सचु वडिआई पाए जिसनो हरि किरपा धारी ॥"
(सूही म. ३, ७५४-१४)

आदर्श विश्वव्यापी धर्म

हमें आज किस बात की आवश्यकता है? क्या एक नया विश्वव्यापी धर्म स्थापित किया जाये? क्या एक ऐसा धर्म जो सब धर्मों की नेकियों और नियमों का सार ही बनाया जाये? यह केवल विचार ही विचार है जो आज तक व्यवहार में पूरा न उतर सका। किस शरीअत को छोड़ा जाये और किस को अङ्गीकार किया जाये? लोगों के स्वभाव और विचार करने के ढङ्ग अपने-अपने अलग हैं और हर एक अपना तरीका उत्तम मानता है। संसार में मतों का मेल और अन्तर सदा रहेगा। हम सब को एक ही विचार पर चलने वाला नहीं बना सकते। पर सब मनुष्यों में आपस में रूहानी मेल अथवा आत्मिक तार-तम्य है जिसे कोई शक्ति तोड़ नहीं सकती। धार्मिक रीति-रिवाजों आदि में भेद है, पर मूल बातें सब की एक सी हैं। इस कठिनाई को दूर करने का केवल एक ही उपाय है, कि परमार्थ को एक विज्ञान की भान्ति संसार के सम्मुख रखा जाये। जो कोई जिस भी धार्मिक विचार अथवा नियम में है, उसी में रहते हुए परमार्थ के विज्ञान को अमली तौर पर (व्यवहार में) सीखे और अपने इस शरीर के अन्दर ही आत्मा का परमात्मा के साथ मिलाप का अनुभव कराये। हर एक का निजी धर्म अपनी आत्मा का परमात्मा से मिलने का एक अनुभव होता है।

धर्म उस 'सच' के साथ जुड़ने के अनुभव का नाम है।

"नानक साचे कउ सचु जानु ॥" (सिरीरागु म. ३, १५-१८)

महात्माओं की रूहें मालिक के साथ जुड़ीं, उन्होंने अपने अनुभवों का, अर्थात् जो कुछ उन्होंने रूहानी-मंडलों में देखा, उनका वर्णन ग्रन्थ-पोथियों में किया। किसी धर्म-शास्त्र अथवा मत-मतान्तर को झूठा न कहो। झूठा

वह है जो उन पर विचार नहीं करता–

"बेद कतेब कहहु मत झूठे, झूठा जो न बिचारै ॥"

(प्रभाती कबीर, १३५०-४)

जिन्हें मालिक से मिलाप का अनुभव हो गया है, वे सब के साथ प्यार करते हैं। वे मालिक के पिता होने का और सब मनुष्यों के प्रति भ्रातृ-भाव का अनुभव करते हैं। निश्चित रूप से समझ लो कि जो लोग परस्पर द्वेष और भेद-भाव का उपदेश देते हैं उन्होंने मालिक का अभी तक कोई तजुर्बा प्राप्त नहीं किया अर्थात् वे मालिक के अनुभव से रीते हैं।

हमारी आत्मा को उस मालिक का जो निजी अनुभव होता है वही हमारा असली धर्म है। हमारे धर्म-शास्त्रों में जिन रूहानी अनुभवों का वर्णन किया गया है, जब तक गुरु द्वारा हम उन्हें अपने अन्दर प्रत्यक्ष नहीं कर लेते तब तक हम उसे अपना धर्म नहीं कह सकते।

"कैसे साहे, जो हम न विआहे ॥"

मनुष्य को मालिक ने अपनी शक्ल पर बनाया है। उसे मालिक से मिलाप करके विकसित होना चाहिये। हमें तो ऐसे धर्म की आवश्यकता है जिसका अनुभव हमें मालिक के साथ मिल कर हुआ हो।

यदि हम संसार के सारे धर्म-शास्त्रों की व्याख्या अथवा जाँच-पड़ताल करते हैं तो पता लगता है कि उनमें जो सच्चाईयाँ हैं वे उन धर्मों के प्रवर्तक महापुरुषों के अपने निजी अनुभवों का निचोड़ हैं। उन महापुरुषों ने मनुष्य के आत्मिक-जीवन के अंग को विशेष रूप से प्रमुख रखा है। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि मनुष्य के अन्दर कोई ऐसी वस्तु है जो शरीर की भान्ति परिवर्तन-शील नहीं। प्रत्येक मनुष्य को अपनी आत्मिक हालत का विकास करना चाहिए ताकि यह उस चीज़ को जान सके जो बदलती और मरती नहीं। मनुष्य का आदर्श साँसारिक पदार्थों का भोग नहीं बल्कि सत्य की प्राप्ति है जो हरएक मनुष्य के अन्दर है। सब धार्मिक पुस्तकों में इस आन्तरिक आत्मिक जीवन को जाग्रत करने और उस महाचेतन सत्य के गुणों को अपने अन्दर धारण करने के साधनों का उल्लेख है। कोई सच्चा धर्म-प्रेमी यह नहीं कह सकता कि उसका धर्म केवल व्यवहारों और रीति-रिवाजों का ही समूह है। सब मतानुयाईयों का मुख्य आदर्श उस सच को जानना ही है।

"नानक साचे कउ सचु जानु" (सिरीरागु म. ३ १५-१८)

सैंकड़ों शरीअतें और मत हो सकते हैं पर सबका उद्देश्य उस मालिक की प्राप्ति है और सबकी बुनियाद में एक ही सिद्धान्त काम कर रहा है जो

नाम, शब्द या कलमे की शिक्षा है। हमारी सुरत के इस शब्द से जुड़ने में ही हमारा कल्याण है। इसी को सुरत-शब्द-योग कह कर पुकारते हैं। हमें भी धर्मों का अध्ययन प्रेमपूर्वक करना चाहिए और उस मूल सिद्धान्त तथा एक ही व्यापक आदर्श को धारण करना चाहिए, ताकि सब मज़हबों की आपसी खींच-तान दूर हो सके। हमारे हृदय में पिछले सारे धर्मों के प्रति सम्मान है क्योंकि सब की नींव में एक ही मुख्य साधन और आदर्श है। हमारे हृदय में उन सब पूर्ण-महात्मा पुरुषों के लिए भी आदर हैं जो धुर-धाम पहुँचे हैं अथवा पहुंचेंगे और जो मालिक के साथ हुए अथवा होने वाले अपने अनुभवों को प्रकट करेंगे।

मालिक एक अलौकिक भाषा द्वारा अवर्णनीय, कभी न खत्म होने वाली किताब है और वेद, इंजील, कुरान-शरीफ़, गुरु-ग्रन्थ साहिब आदि सब धर्म-पुस्तकें मालिक की किताब के बहुत से पृष्ट हैं जो लिखे जा चुके हैं तथा इसी प्रकार और अनगिनत पृष्ट लिखे जायेंगे। जो पिछले संत-महात्मा उस मालिक का अनुभव वर्णन कर गये, जो वर्तमान महात्मा वर्णन कर रहे हैं तथा जो आगे भी आवेगे उन सबको हमारा नमस्कार है। आज इस जड़ में फँसे युग में हम धर्म के बारे बहुत कुछ सुन रहे हैं, सबके लिए समान व व्यापक धर्म के कई स्थानों पर सम्मेलन होते दिखाई दे रहे हैं, कई पुस्तकें लिखी जा रही हैं और कई धर्म-प्रेमियों की दृष्टि वास्तविक तथ्य की ओर खींची जा रही है। सच्चाई तथा नैतिक नियमों को, जो सब के लिए समान हैं, स्पष्ट रूप में संसार के सम्मुख रखा जा रहा है। सम्मेलनों, उपदेशों और ऐसी पुस्तकों का अध्ययन एक ऐसे सर्व-व्यापी धर्म का नमूना हमारे सम्मुख उपस्थित कर रहा है जिसका उद्देश्य हमारी आत्मा का परमात्मा के साथ अनुभव है तथा जो आने वाले समय में संसार का समान,सर्वमान्य और विश्वव्यापी आत्मिक धर्म होगा। इसमें सब लोग अपने-अपने समाज में रहते हुए ईश्वर का अनुभव करेंगे और हरएक समय के आमिल फ़कीरों, संतों-महात्माओं, ऋषियों-मुनियों का मान करेंगे। यह ऐसा धर्म है जो परम्परा से चला आया है और उतना ही पुराना है जितना की यह संसार हैं।

अपने अन्दर एक दृष्टि

ऐ मानव! तू कब तक घड़े के बाहरी साँचे-ढाँचे और चिह्न-चक्रों से मोहित हो कर भूला रह सकता है? इससे हट कर, घड़े के अन्दर जो पानी है उसकी ओर दृष्टि डाल। तू कब तक बाहरी सूरतों पर मोहित होता रहेगा? तू हक़ीक़त का खोजी बन और हक़ीक़त की ही खोज कर। प्रत्यक्ष सूरतें नशिवान हैं, केवल वह सच्चाई (हक़ीक़त) ही अटल और निश्चल है।

तू आकृतियों (शक्लों) को देख कर और उनमें मगन होकर हक़ीक़त की ओर से बेसुध हो रहा है। यदि समझदार है तो सीप में से मोती को निकाल ले, यह सीप तो केवल बाहरी खोल-मात्र है। यह खोल तो केवल किसी बहुमूल्य वस्तु को रखने के लिए बनाया गया है। अपने अन्दर झाँकने की आवश्यकता है। पिछले महात्मा पुरुषों के अनमोल वचनों के भण्डार को खोल कर देखो, उनमें आत्मा की खुराक छिपी हुई है जिसे खाकर वह तृप्त हो सकती है। गुरु अर्जुन साहिब फ़र्माते हैं—

"पीऊ दादे का खोलि डिठा खजाना ॥ ता मेरै मनि भइआ निधाना ॥"

(गउड़ी म. ५, १८६-१)

मनुष्य हाथ, पैर आदि से युक्त शरीर रखता है, जिसकी बनावट कितनी सुन्दर है। पर यह बात स्पष्ट है कि शरीर के सारे अंगों में आँखों का स्थान सब से ऊँचा है, एक ख्याल भी जब इसके अन्दर झलकता है तो सैंकड़ों जहान उलट-पलट हो जाते हैं। ये हमारी आन्तरिक अशान्त अथवा स्थिर अवस्था की झलक देती हैं। आँखें हमारी आत्मा के प्रकट होने का स्थान है। ये हमारी आन्तरिक गति और भावनाओं का प्रभाव औरों पर डालती है इनकी निराली बोली है, जो मूक भाषा में है, इशारे-इशारे में केवल संकेत मात्र से ही ये सब कुछ प्रकट कर देती हैं जो कदाचित् करने में नहीं आ सकता।

जागृत अवस्था में आत्मा और मन आँखों के पीछे रहते हैं। यदि किसी अन्धे को भी आवाज़ देकर पुकारें तो वह आँखों पर ही ज़ोर देकर कहता है, "हाँ भाई।" स्वप्न में वे कण्ठ में होते हैं और गहरी निद्रा में नाभि में। हमें जागृति से बेहतर व ऊँची अवस्था में जाना है, न कि नीचे। इसलिए संतों का मार्ग आँखों के ऊपर से शुरू होता है।

यह पिण्ड ब्रह्माण्ड का नमूना है।

"जो ब्रहमंडे सोई पिंडे; जो खोजै सो पावै ॥
पीपा प्रणवै परम ततु है, सतिगुरु होइ लखावै ॥"

(धनासरी, पीपा, ६९५-१५)

जो पिण्ड को खोजता है वह ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड के पार की रचना का ज्ञाता हो जाता है। इस रचना के चार विभाग हैं—

१. पिण्ड, २. अण्ड, ३, ब्रह्माण्ड और ४. सचखण्ड। ब्रह्माण्ड तक का भाग, जो ब्रह्म की सीमा में है, प्रलय में नष्ट हो जाता है। सचखण्ड अनश्वर देश है जो प्रलय और महाप्रलय में नहीं गिरता। यह संतों का निज-धाम है और संत-मत का आदर्श है। ब्रह्माण्ड के छः चक्रों का प्रतिबिम्ब अन्ड के

छ: चक्रों पर गिर रहा है और अन्ड के छ: चक्रों का प्रतिबिम्ब पिन्ड के छ: चक्रों पर गिरता है। जिस प्रकार पानी में गिरने वाले सूर्य के प्रतिबिम्ब में सूर्य का आकार होता है, सूर्य की गर्मी या तेज उस में नहीं होता, पर पानी के उस प्रतिबिम्ब की परछाई यदि दीवार पर गिरती है तो उसमें सूर्य का आकार भी नहीं रहता, केवल कुछ झलकमात्र होती है। उसी प्रकार ब्रह्माण्ड के छ: चक्र, ब्रह्माण्ड से अण्ड और अण्ड से पिण्ड तक प्रतिबिम्बत होकर अपने मूल-रूप के अभास-मात्र रह जाते हैं। पिण्ड के छ: चक्र आँखों तक समाप्त हो जाते हैं। वे इस प्रकार हैं–

१. गुदा-चक्र (मूलाधार), २. इन्द्रिय-चक्र (स्वाधिष्ठान), ३. नाभि-चक्र (मणिपूर), ४. हृदय-चक्र (अनाहत), ५. कण्ठ-चक्र (विशुद्ध) और ६. नेत्र-चक्र (आज्ञा) जो आँखों के पीछे है।

योगी-जन पिंड के इन छ: चक्रों का अभ्यास करके ऊपर आते हैं। वे पहले, नेति, धोती और वस्ति द्वारा शरीर के सब मैल को साफ़ करते हैं। फिर वे अपनी तवज्जह (ध्यान) को मूलाधार या गुदा-चक्र (जिसे गणेश-चक्र भी कहते हैं) पर एकत्रित करते हैं। फिर कुण्डलिनी को जगा कर उसे रीढ़ हड्डी के बीच जोड़ते हैं और इस प्रकार अभ्यास द्वारा इन चक्रों को पार करके वे आँखों के पीछे आज्ञा-चक्र में पहुँचते हैं। यह अभ्यास बड़ा कठिन है, क्योंकि इसमें प्राणों का संयम करना पड़ता है, गृहस्थी तथा निर्बल मनुष्य यह नहीं कर सकते। संत जन प्राणायाम नहीं कराते, वे स्वाँस के योग की अनुमति नहीं देते। संत-जन नीचे के चक्रों को, जो ब्रह्माण्ड के चक्रों के प्रतिबिम्ब के भी प्रतिबिम्ब हैं, छोड़ देते हैं। वे परमार्थ का अभ्यास आँखों के पीछे आत्मा की बैठक से आरम्भ करवाते हैं। वे कहते हैं कि रूह की बैठक पर बैठ कर मालिक के किसी नाम का उसके प्रति रुख करके, युक्ति अनुसार प्रेम-सहित सुमिरन करो, आत्मा सिमट कर वहां आ जायेगी और प्रकाश हो जायेगा।

सेंट मैथ्यूज़ कहते हैं कि आँखें शरीर की नूर हैं, इसलिये यदि तेरी आँख एक हो जाये, अर्थात् पुतलियों की धारा पीछे हट कर शिवनेत्र में आ जाये तो तेरा शरीर नूर से भर जायेगा।

इसी मार्ग का संकेत तुलसी साहिब भी करते हैं कि आँखों की पुतली में तिल है और तिल के अन्दर रुहानियत का सारा भेद छिपा पड़ा है, ज़रा इस काले परदे के पार जाकर देख तो सही–

"पुतली में तिल है तिल में भरा राज़ कुल का कुल।
इस परदाए-सियाह के ज़रा पार देखना॥"

मुइनुद्दीन चिश्ती साहिब फ़र्माते हैं—तू आँख को खोल ताकि ख़ुदा का जल्वा तुझे नज़र आ जाये। तू केवल आँखें ही बन जा और बोलने व सुनने के रास्ते बन्द कर ले।

'चश्म बकशाऐ के दीदारे ख़ुदा जल्वा नमूद,
दीदह शौ यकसर-ओ बर बन्द दरे गुफ्त-ओ शुनीद।"

ये आँखें सचमुच धुराधाम की खिड़कियाँ हैं तथा मालिक की ओर जाने की राह हैं।

"यह आँखें खिड़की हैं धुर घर की।" (सार वचन, स्वामी जी)

गुरु नानक साहिब भी इसका संकेत करते हैं—

"इक महल दो बारीआँ शिव शक्ति सुलतान।
खिड़की खोल दीदार देण बहुत बड़ा इन मान॥"
(जनम साखी, मक्के दी गोष्ट)

कबीर साहिब फ़र्माते हैं—

"दोनों तिल इक तार मिलाओ फिर देखो गुलज़ारा है।"

आँखों के दो तिलों की ज्योति शिव-नेत्र में, जिसे तृतीय नेत्र या मुसलमान फ़कीर जिसे नुक्ताए सुवैदा कहते हैं, जहाँ आँखों की दो रगें जाकर मिलती हैं तथा जहाँ दोनों आँखों की सत्ता इकट्ठी होती है, प्रकाश हो रहा हैं। उससे आगे सुखमन (सुषुम्ना) नाड़ी में आओ जिसे मुसलमान शाहरग कहते हैं।

"अल्लाह शाहरग तों नज़दीक।" (बुल्लेशाह)

वहाँ पर शब्द-धुन या वाणी प्रकट होती है, जो सारे जहान की गुरु है।

"सुखमन कै घरि रागु सुनि, सुंनि मंडलि लिव लाइ॥
अकथ कथा बीचारीऐ, मनसा मनहि समाइ॥"
(मलार रागु म. १, १२६१-२)

"कलि कीरति सबदु पछानु॥ एहा भगति चूकै अभिमानु॥"
(आसा म. ३, ४२४-६)

जब आत्मा सिमट कर तीसरे तिल में आती है तो वहाँ पर केवल ध्यान द्वारा ही ठहर सकती है।

वहाँ आत्मा तारा-मण्डल तथा चन्द्र-सूर्य को पार करके गुरु के नूरी (ज्योतिर्मय) स्वरूप को पाती है, फिर वह रूहानी मण्डलों की सैर करती हुई शब्द-धुन के आसरे सचखण्ड की रसाई प्राप्त कर लेती है। संतों का मत कोई जाति या धर्म नहीं है। जो सचखण्ड पहुंचे वही संत हैं, चाहे वह किसी भी जाति अथवा धर्म का क्यों न हो। जिस प्रकार एम.ए. की डिग्री प्राप्त करने वाले को हम एम.ए. कहते हैं, चाहे वह किसी भी कौम या मज़हब का

क्यों न हो। सब कौमों में दो प्रकार के फ़कीर होते हैं, एक दर्जाते सिफ़ली के और दूसरे दर्जाते उलवी के। दर्जाते सिफ़ली के फ़कीर पिंड के छः चक्रों में रहते हैं और दर्जाते उलवी के फ़कीरों का मार्ग आँखों के ऊपर से शुरू होता है। मुसलमान फ़कीरों में भी अनेक आँखों के ऊपर गये। हज़रत इब्राहीम बताते हैं कि उन्होंने तारे देखें और उन्हें छोड़कर आगे गये। गुरु ग्रन्थ साहिब में भी इसका उल्लेख है—

"तारा चढ़िआ लंमा किउ नदरि निहालिआ राम ॥
सेवक पूर करंमा सतिगुरि सबदि दिखालिआ राम ॥"
(तुखारी म. १, १११०-१७)

तुलसी साहिब भी यही फ़र्माते हैं—

"गगन द्वार दीसे इक तारा, अनहद नाद सुनो झुनकारा ॥"

हज़रत मुहम्मद साहिब फ़र्माते हैं कि उन्होंने 'शक़्क़-उल-कमर' (चांद के दो टुकड़े कर देना) किया है, अर्थात् वे चन्द्र से ऊपर गये। इस मार्ग पर जाने वाले सारे फ़कीर शक़्क़-उल-कमर करके ही जाते हैं।

बादशाह का शरीर चाहे प्रकट में एक ही होता है, पर अनेकों सेनाएँ इसके इशारे पर चलती हैं। यह ख़्याल (सुरत) एक साधारण वस्तु प्रतीत होता है पर वह उस महान् ख़्याल (शब्द) का अंश है। यदि इसे सम्हाल लें तो यह समुद्र के ज्वार की भाँति सारे संसार को हिला सकता है। संसार का प्रत्येक काम-काज, पढ़ना-लिखना, कार-व्यवहार आदि इसी ख्याल अथवा सुरत के आसरे है। शरीर, घर-बार, नगर, जंगल, पहाड़ आदि नदियें, धरती-आकाश, सूर्य-चन्द्र सब इसी में स्थिर हैं। मनुष्य अज्ञानता-वश शरीर को बादशाह और सुरत (आत्मा) को तुच्छ समझ रहा है। हमें शरीर ही सब-कुछ नज़र आ रहा है, सुरत चूहे की भाँति और तन बहुत विशाल प्रतीत हो रहा है। जीव बुद्धिहीन होकर महा अविद्या में फंस रहा है और परछाईं को मूढ़ता-वश मनुष्य समझ रहा है। क्या जीवन इस हड्डियौं और माँस के शरीर से अधिक मूल्यवान नहीं ? और क्या शरीर पोशाक से अधिक आदर योग्य वस्तु नहीं ? इसलिये ऐ मानव ! तू इस तन की लज़्ज़त (स्वादों) से हट। वासनाओ और इन्द्रियों के भोगों की ओर से मुख मोड़ने में सब प्रसाद हैं। जो शरीर के रसों में आसक्त हो रहा है, समझो कि वह स्वयं अपनी हत्या कर रहा है। तू तो सुन्दर, स्वरूप, यूसुफ़* की भाँति इस तन के कुएं में गिरा पड़ा है। इससे निकलने के लिये इसके अन्दर एक गुप्त रस्सी (नाम की

*याकूब का पुत्र जो बहुत सुन्दर था, जिसे भाइयों ने ईर्ष्या-वश एक सौदागर के हाथ बेच दिया था।

डोर) है, जो मालिक की दया की धार के रूप में आ रही है। उसी रस्सी को पकड़ कर इस तन रूपी कुएँ के बाहर आ, ताकि तू मालिक की दरगाह में पहुँच सके। तू एक नई दुनिया में आ जायेगा जो अभी तक आँखों से ओझल है। ये स्थूल आँखें केवल नाशवान चीज़ों को देखती है। यदि तेरी अन्दर की आँख खुल जाए तो तू अमर देशों को देख सकेगा। हैवान का सिर ज़मीन की ओर रहता है, तू तो इन्सान है, तेरा सिर तो ऊपर की ओर है, तू तो ऊपर की ओर नज़र कर–

"अन्दर हैवाँ बिगर सर सूए ज़मीन दारद।
ग़र आदमी आख़र सर जानबे बाला कुन ॥ (शम्स तबरेज़)

हैवानों की भान्ति हर समय घास चरने का ही ख़्याल न रख। तू इन इन्द्रियों से ऊपर आ, क्योंकि जब तक इन्सान इन्द्रियों के सुखों से ऊपर नहीं आता, वह उस गैब (अदृश्य) की तस्वीर से अनजान रहता है।

'चूंजे हिस बेरूँ नयामद आदमी।
बाशद अज़ तस्वीर ग़ैबी अयजमी ॥" (मौलवी रूम)

इस तंग जिस्म से जब तू आज़ादी पा लेगा तब बग़ैर मुशक़्क़त (परिश्रम) के तू एक नई दुनिया को प्राप्त करेगा।

"अज़ मफ़ीक़े जिस्म चूउं याबी ख़ुलास।
बे तजद्द आलमे याबी जदीद ॥" (शम्स तबरेज)

हाफ़िज़ साहिब फ़र्माते हैं कि जब तक तू तबियत (मन) की सराय से बाहर नहीं आता तेरा हक़ीक़त की गली में जाना किस तरह हो सकता है–

"तूह कज़ सराए तबीयत नमे रवी बेरूँ।
कुजा बकूए हक़ीक़त गुज़र तवानी कर्द ॥"

इन इन्द्रियों के अनुभवों से ऊपर आने को संतो की भाषा में जीते जी मरना और वेदान्त में जड़ व चेतन का अलग-अलग होना कहते हैं। हमारी आत्मा तन के रोम-रोम में रची हुई है। संतों की शिक्षा के अनुसार अभ्यास द्वारा यह शरीर को छोड़ कर ऊपर आती हैं–जो केवल शब्द के अभ्यास द्वारा ही हो सकता है–तब सूक्ष्म, कारण और निर्मल चेतन मण्डलों का अनुभव करती हुई मालिक की अकथ एवं अवर्णनीय अवस्था में लीन हो जाती हैं, बूंद समुद्र में समा जाती है।

गुरुवाणी तथा और-और महात्माओं की वाणियों में वाहिगुरु (परमात्मा) के दर्शनों का उल्लेख आता है।

"अदिसटु अगोचरु अलखु निरंजनु सो देखिआ गुरमुखि आखी ॥"
(सिरीरागु म. ४, ८७-१९)

"नानक का पातिशाहु दिसै जाहरा ॥" (आसा म. ५, ३९७-७)

"नानक का प्रभु पूरि रहिओ है जत कत तत गोसाई ॥"

(सूही म. ४, ७५८-१०)

"बख़ाहद चश्म सरे माशूक दीदन,
कलामश रा बगोश ख़ुद शुनीदन।" (शम्स तबरेज़)

मालिके-कुल स्वयं अकथ और निराला है, वह अशब्द है। वहां न प्रकाश है न आवाज़। वह अपने आप में स्थिर है। वह न एक है, न दो। हाँ, सारे महात्माओं ने उसका वर्णन सीमित करके ही किया है, किन्तु वह है असीम तथा अवर्णनीय।

"हरि बिअंतु हउ मिति करि वरनउ किआ जाना होइ कैसे रे ॥"

(सोरठि म. ५, ६१२-९)

उस कुल मालिक ने जो अगम, अलख और सत्पुरुष का निर्मल चेतन स्वरूप रचा है, वह भी अकथनीय है। पर आत्मा निरत द्वारा उसका अनुभव करती है। संतों ने जिसका वर्णन 'अकाल' कह कर किया है आत्मा को उस दयाल के दर्शन होते हैं। वह स्वरूप करोड़ों रचनाओं का स्वामी है, वह अटल है, अविनाशी है और प्रलयादि की सीमा से परे है। उसमें से एक किरण ने निकल कर नीचे के देशों की स्थापना की जिनमें चेतन और माया का मिश्रण है तथा जो प्रलय ओर महाप्रलय में नष्ट हो जाते हैं। उन देशों में कहीं चेतनता का प्रभाव अधिक है तथा माया बहुत कम है, कहीं चेतनता और माया बराबर हैं और कहीं माया प्रबल है और चेतनता बहुत कम। इन देशों के धनी (स्वामी) ज्योति निरंजन (अण्ड या सूक्ष्म देश का स्वामी), ओंकार (कारण तथा महा-कारण देशों का स्वामी) आदि हैं, जिनका प्रकाश व तेज क्रमशः बढ़ता जाता है और जो उसी सत्पुरुष से सत्ता प्राप्त करके इन देशों को चला रहे हैं। अपनी अपनी गति अथवा रसाइ के अनुसार आत्मा इनके दर्शन करती हुई अंत में उस सतनाम अथवा सत्पुरुष के दर्शन करती है, जिसे मुसलमान फ़क़ीरों ने 'हक़' कह कर पुकारा है। दर्शन करने की इस बात से स्पष्ट है कि अभी तक भिन्नता है। ब्रह्म और पारब्रह्म से ऊपर सत्पुरुष का निर्मल चेतन देश है, यहीं सब (धर्मों) के 'खसम', स्वामी और 'हरिराय' की अवर्णनीय और निराली निराकार छवि है जिसका हम किन्हीं शब्दों में भी वर्णन नहीं कर सकते। उसमें आत्मा लीन हो जाती है, जिसे हम पानी का पानी में मिलने और किरण के सूर्य से मिलाप के उदाहरणों द्वारा कुछ-कुछ समझ सकते हैं। गुरु अर्जुन साहिब ने इस अवस्था का क्या अनोखे ढंग से वर्णन किया है :-जिस प्रकार जल, जल में मिल कर एक-रूप हो

गया उसी प्रकार हमारी रूह उस मालिक में एकमेक हो गई। फिर फ़र्माते हैं, कि जिस प्रकार किरण सूर्य में मिल कर स्वयं सूर्य ही बन गई, उसी प्रकार मेरी आत्मा रूपी बूँद उस समुद्र में समा कर उसका रूप हो गई। पूर्ण के साथ मिलकर आत्मा स्वयं पूर्ण हो गई। यह रूह की रसाई (पहुँच) का अन्तिम मुकाम है।

"जिउ जल महि जलु आइ खटाना ॥
तिउ जोती संगि जोति समाना ॥" (गउड़ी म. ५, २७८-४)

"सूरज किरणि मिले, जल का जलु हूआ राम ॥
जोती जोति रली संपूरनु थीआ राम ॥ (बिलावलु म. ५, ८४६-१६)

यह हालत अकथनीय और अवर्णनीय है। लफ़्ज़ों में यह शक्ति नहीं कि इसका कोई इशारा भी दे सके। बस 'हैरत हैरत हैरत होई' वाला हाल है। कोई इसे लफ़्ज़ी-बन्दिश या शाब्दिक-बन्धन में किस प्रकार ला सकता है! हिन्दू-मुसलमानों के आम फ़कीर तीनों-गुणों और तीनों लोकों अथवा ब्रह्म तक का उपदेश देते हैं, कोई-कोई पारब्रह्म तक का संकेत भी करते हैं। पर संतों ने चौथे लोक को, जो प्रलय और महाप्रलय की सीमा से परे है (जो अटल, अनश्वर, अकथनीय और निराला है), मुख्यता देकर अपना आदर्श बनाया है।

इस आदर्श धर्म का अनुभव मनुष्य को अपने अन्दर होता है

आत्मा का परमात्मा के साथ जुड़ने का अनुभव प्राप्त करने के लिए हमें इस शरीर की प्रयोगशाला (लेबारेटरी) में ठीक उसी प्रकार प्रवेश करना पड़ता है, जिस प्रकार विज्ञान के प्रयोग करने के लिये एक विद्यार्थी साइंस-रूम में दाखिल होता है। वह बाहर के दरवाज़े बन्द कर लेता है ताकि बाहरी शोर-गुल अन्दर न पहुँचे और उनका ध्यान बाहर न जाये। फ़िर, एक मेज़ पर सब यन्त्र साफ़-सुथरे करके रखे होते हैं। वह अपने विज्ञान-शिक्षक को साथ खड़ा कर लेता है तथा उनकी शिक्षा के अनुसार प्रयोग करता है। पहली बार नहीं तो दूसरी या तीसरी बार वह अपने प्रयोग में सफल हो जाता है। ठीक इसी तरह इस शरीर के अन्दर जा कर बैठना पड़ता है तथा बाहर के 'पट' बन्द करके अन्दर के पट' खोलने पड़ते हैं। यह अन्दर जाना सुरत या ध्यान का सिमट कर रूह के केन्द्र पर इकट्ठा होना है अर्थात् सुरत को, जो बाहरी दुनिया में फैली हुई है और शरीर के रोम-रोम में रच कर उसे सत्ता दे रही है, रूह की बैठक पर इतना एकाग्र करना है कि शरीर का ख्याल ही न रहे। बाहर से शरीर के दरवाज़े पूर्णतया बन्द करके अन्दर बैठ जाओ। उस स्थान पर बैठ कर अपने रूहानी साइंस-मास्टर (विज्ञान-शिक्षक) को पास बैठा लो ताकि तुम्हारे ध्यान को वहाँ खड़ा होने के लिये

साधन मिल जाये। तुम अब शरीर नहीं, शुद्ध सुरत (आत्मा) हो। तुम्हारा गुरु भी शरीर नहीं। उससे शिक्षा लेकर अन्तर्मुख उस मालिक परिपूर्ण के साथ जुड़ने का अनुभव कर लो जो नाम, शब्द, गुप्तवाणी, श्रुति होकर इस हरि-मन्दिर के अन्दर तुम्हारे साथ विराजमान है। यह तभी हो सकेगा जब तुम्हारे मन और बुद्धि साफ़ तथा पवित्र हो जायेंगे। यह पवित्रता क्या हैं? जिसने केवल बाहर से अपना शरीर धो लिया, पर अन्दर से उसका दिल मैला है, उसने अपने लोक-परलोक दोनों बिगाड़ लिये। यहाँ तो वह काम, क्रोध, मोह आदि से ग्रसित हो दुःखी रहता है, अपनी आत्मा और ध्यान को फैलाता है और इन्द्रियों के द्वारा शक्तिहीन हो जाता है तथा आगे चल कर उसे पछताना पड़ता है–

"बाहरु धोइ अंतरु मनु मैला, दुइ ठउर अपुने खोए॥
ईहा कामि क्रोधि मोहि विआपिआ आगै मुसि मुसि रोए॥"

(आसा म. ५, ३८१-४)

हज़रत मुहम्मद साहिब भी दिल की पवित्रता की आवश्यकता बताते हैं "जन्नत की कूंजी नमाज़ है और नमाज़ पाकीज़गी है।" फिर कहते हैं, "पाकीज़गी निस्फ़ (आधा) ईमान है।" सेंट मैथ्यूज़ भी यही फ़र्माते हैं, "वे लोग मुबारक हैं जिनका दिल पवित्र है, क्योंकि केवल वे ही लोग रब्ब का दीदार पावेंगे।"

केवल तन को धोने से अन्दर का मैल नहीं छूटता। तन का मैल तो पानी से धोया जाता है, मल-मूत्र का मैल साबुन से धोया जाता है, पर अन्दर का मैल नाम या शब्द के पानी द्वारा ही धोया जा सकता है, उसको साफ़ करने का और कोई उपाय नहीं।

"भरीऐ हथु पैरु तनु देह॥ पाणी धोतै उतरसु खेह॥
मूत पलीती कपड़ु होइ॥ दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि॥ ओहु धोपै नावै कै रंग॥"

(जपुजी, ४-१२)

नाम, शब्द धुन आदि के साथ किस प्रकार संयोग किया जाता है? नाम या शब्द के साथ तवज्जह (ध्यान) की धार को समेट के ही जुड़ा जा सकता है। इसलिए जितेन्द्रिय होना आवश्यक है–

"दस इंद्री करि राखै वासि॥ ताकै आतमै होइ परगासु॥"

(गउड़ी म. ५, २३६-१५)

यह आत्मा का परमात्मा से मिलने के लिए आन्तरिक तथा व्यवहारिक अनुभव है जो हरएक का सच्चा मज़हब है। इसका उल्लेख ग्रन्थ-पोथियों

के अन्दर है, किन्तु इसका अनुभव हमें अपने अन्दर करना हैं। इसलिए किसी आमिल (सिद्ध पुरुष) की आवश्यकता है, जिसे पाकर हम मालिक से मिलने के अपने प्रयोग में सफल हो जायें। ऐसे व्यक्ति का नाम संतों ने गुरु रखा हैं।

जब तक हमें स्वयं आत्मा और परमात्मा का अनुभव नहीं होता, हमारे अन्दर विश्वास नहीं बंधता कि परमेश्वर है। संतों-महात्माओं ने स्वयं अनुभव द्वारा उस परमात्मा को पाया है। उनकी शिक्षा पर चलो, क्योंकि वे सब वही ब्यान करते हैं जो उन्होंने अपनी आँखों देखा है :–

"संतन की सुणि साची साखी ।। सो बोलहि जो पेखहि आखी ।।"

(रामकली म. ५, ८९४-४)

एक महात्मा फ़र्माते हैं कि जब तक हम अपनी आँखों से नहीं देखते तब तक हमें गुरु के वचनों का पूरा-पूरा विश्वास नहीं बंधता।

"जब लग न देखूं अपनी नैणी।
तब लग न पतीजूँ गुरु की वैणी।"

तुलसी साहिब का भी यही कथन है–

"जब देखें हम अपने नैना। तब माने सतगुर के बैना ।।"

हम तजुर्बे की ख़ातिर उनकी शिक्षा पर चल कर आत्मा द्वारा परमात्मा का अनुभव करें। संतों के विचार बड़े स्वतन्त्र हैं। वे तो यहाँ तक फ़र्माते हैं कि भाई अपने आपका स्वयं अनुभव करके देख, किसी के कहे कहाए पर न रह।

आप आप को आप पिछानो। कहा और का नैक न मानो ।।

(सार बचन, २०३)

ठीक लक्ष्य

दुःख से बचने के लिए तथा परम-सुख की प्राप्ति के लिए लोग अन्धा-धुन्ध, जी-तोड़ प्रयास करते हैं, पर कोई प्राप्ति होती नज़र नहीं आती। बुद्धिमान व्यक्ति पुरुषार्थ के साथ-साथ ठीक लक्ष्य को अपने सम्मुख रखता है। यदि निशाना ठीक न हो तो हरएक कदम जो बड़ाया जाता है गुमराही (पथ-भ्रष्ट होना) है, समय की व्यर्थ बरबादी हैं। लक्ष्य सही होने पर थोड़ा-सा परिश्रम भी व्यर्थ नहीं जाता। अतएव, किसी आदर्श की प्राप्ति के लिए केवल पुरुषार्थ करना ही पर्याप्त नहीं, उसके साथ ही लक्ष्य का सही होना भी आवश्यक है। जिस प्रकार वस्तु कहीं पर है और उसे ढूँढा कहीं और जाये तो वह वस्तु मिलती नहीं, उसे खोजने में सारा समय चला जाता है। कबीर साहिब फ़र्माते हैं–

"वस्तु कहीं ढूंढ कहीं, किह विध आवे हाथ।"

मनुष्य का ठीक लक्ष्य को अपने सामने न रखना दुनिया की सर्वव्यापी बेचैनी और अशान्ति का सब से बड़ा कारण है।

जीवन का सही लक्ष्य मालूम करने के लिए मनुष्य को अपनी शरीर-रूपी किताब को पढ़ना चाहिए, क्योंकि जितनी भी किताबें और विद्याएँ है वे इसी इन्सानी-पुस्तक से प्रकट हुई हैं। इन्सान के अन्दर रब्ब की आयतें उतरती हैं। मनुष्य सब विलक्षणताओं में विलक्षण है। यदि इसकी आन्तरिक आँखें खुल जायें तों यह वास्तव में स्वयं हरि का मन्दिर है। यह शरीर घास का पूला है जिसके नीचे रूहानियत का अटूट सागर बह रहा है। यह देखने में तो एक किन्का (ज़र्रा) नज़र आ रहा है पर अन्दर से यह सौ सूर्यों की भान्ति है—

"तन चो मुश्ते कहा दाँ—दर ज़ेरे ऊ दरियाए जाँ ॥
गर चेज़ बेरूँ ज़रए-सद आफ़ताबी अज़ दरूँ ॥" (शम्स तबरेज़)

बग़ैर मुर्शिद के इन्सान अपने अन्दर की अवस्था की नहीं समझ सकता। यह शरीर सारी रचना का ख़ुलासा अथवा ब्यौरा है।

"जो ब्रहमंडे सोई पिंडे, जो खोजै सो पावै ॥"
(धनासरी पीपा जी, ६९५-१५)

इस घर के अन्दर हो सब वस्तु मौजूद है। जो इसको छोड़ कर बाहर ढूंढता है, वह भ्रमों में भूला पड़ा है—

"संभ किछु घर महि बाहरि नाही ॥ बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही ॥"
(माझ म. ५, १०२-३)

सच्चा धर्म संत-मत अथवा परा-विद्या है

एक व्यक्ति दो गज़ तक रास्ता देख सकता है और दूसरा दोनों जहानों के मालिक को देखता है। इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। तू ऐसे सुरमे को ढूंढ जिसके द्वारा ईश्वरीय गुप्त भेद तुझ पर प्रकट हो जायें—

"यक नज़र दो गज़ हमें बीनद ज़ राह,
यक नज़र दो कान दीद-ओ रूए शाह।
दरम्याने-ईं दो फ़र्के-बे-शुमार,
सुरमाए जू दानह् इल्मे बिल सरार ॥" (मौलवी रूम)

यह इल्मे-सीना (परा विद्या) है, सफ़ीना (अपरा विद्या) नहीं। विज्ञान कितनी भी उन्नति कर ले वह इल्म ही है, इल्मुल-इल्म (सर्वश्रेष्ठ ज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञान) नहीं। इल्म केवल रचना पर प्रकाश डालता है, पर इल्मुल-इल्म स्वयं इस शरीर और आत्मा को प्रकाशमान करता है। विज्ञान दृष्टिमान का ज्ञान है। विज्ञान के नियमों को जान कर हम उस पर (दृष्टिमान रचना पर) शासन कर सकते हैं, पर हम अपने आप की ओर से सोए रहते हैं।

जब तक कि इल्मुल-इल्म का, जो अन्तर का भेद हैं, सबक नहीं पढ़ते हम अनपढ़ ही हैं। जब तक हमारी आँखों में देखने की शक्ति न हो, हजारों सूर्य-चन्द्र चढ़े रहने पर भी हमारे लिये घोर अन्धकार ही है। जब तक हम अपने आप को नहीं जानते, सब कुछ जानते हुए भी हम वास्तव में कुछ नहीं जानते। ये बाहरी विद्याएँ हमारी समझ-बूझ बढ़ाने का प्रयोजन तो सिद्ध करती हैं, पर हमें वास्तविक आत्मिक-जीवन और उसके आदर्श की प्राप्ति नहीं करा सकतीं। बूअली कलंदर साहिब फ़र्माते हैं कि जो कुछ दृष्टिमान के बारे में हम जानते हैं, वह सब मूर्खता है और जो कुछ दृष्टिमान हम देख रहे हैं, वह सब हैरानी है–

"आँचे मीदानी हमह् नादानी अस्त।
व आँचे में बीनी हमह हैरानी अस्त ॥"

इल्मे सीना (आन्तरिक विद्या) के आमिलों (पहुँचे हुओं) की दृष्टि में इल्मे सफ़ीना (बाहरी ज्ञान) वाले मूर्ख होते हैं, क्योंकि उनकी देखने वाली आँखें फ़ना (नश्वर) से परे नहीं देख सकतीं।

"रूबरू अमिलाने अमल बातिन फहम। आलिमाँ इल्मे ज़ाहिरी जाहिल ॥"
(सार बचन, १८५)

विज्ञान (साइंस) पदार्थों का पारस्परिक सम्बन्ध बताता है, पर इन पदार्थों को बनाने वाली हस्ती से वह बिल्कुल अनभिज्ञ या अनजान हैं। केवल 'जानना' हमारे जीवन में रूहानियत को प्रकाशमान नहीं कर सकता। 'जानने वाले' को जानना तथा उसको आधार देने वाले मालिक परिपूर्ण की जो हस्ती है उसे जानना 'ज्ञान' है, इसी ज्ञान से जीव का कल्याण है। सन्तों ने ग्रन्थों-पोथियों के विचार को ज्ञान नहीं कहा है।

संत-मत आन्तरिक विद्या है, यह बाहरी विद्या की भाँति किताबी विद्या नहीं है। यह विद्या गुरु-शिष्य की प्रणाली द्वारा, पीढ़ी दर पीढ़ी, सीने ब-सीने (एकसे दूसरे तक अन्दर ही अन्दर) चली आ रही है। इसे परा विद्या कहते हैं, जो किसी बाहरी विद्या की मुहताज नहीं (अपेक्षा नहीं करती),स्वाभाविक है। इसमें सन्देह नहीं कि किसी-किसी ने इस विद्या को लिखित रूप में लाने का प्रयत्न किया है। पर यह प्रयत्न सदैव अपूर्ण ही रहा. क्योंकि उसका विवरण ब्यान में नहीं आ सकता और इस स्थूल संसार में उसका कोई उदाहरण या नमूना नहीं है। संतों का सदा यही उपदेश रहा है कि करनी करो तथा सोच-विचार, वाद-विवाद और बुद्धि की चतुराइयों से दूर रहो। इन दोनों विद्याओं में यह अन्तर है कि एक तो ज़बानी जमा-खर्च पर ज़ोर नहीं देती, वह करनी को सम्पूर्ण महत्व देती है और जीवित अथवा नकद

धर्म की ताकीद (आग्रह) करती है। दूसरी, केवल किताबी है, जो कि कोई धर्म नहीं क्योंकि चाहे कोई कितना ही आलिम-फ़ाज़िल (उच्च कोटि का विद्वान्) हो जाये उसकी ज़िन्दगी पलटा नहीं खाती। जिस किसी को रूहानी लाभ हुआ है, वह केवल कमाई और अभ्यास के द्वारा ही हुआ है।

"यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि बिचार।
कथनी तज करनी करो, तो कुछ पावो सार ॥ (कबीर साहिब)

मुण्डकोपनिषद् में वृत्तान्त है कि शौनक नामक एक गृहस्थ, भारद्वाज ऋषि के पास आया और पूछने लगा "महाराज, वह क्या है जिसे जानने से सब-कुछ जाना जा सकता है?" ऋषि ने उत्तर दिया, 'ब्रह्म के जानने वाले यह बताते हैं कि दो विद्याएं हैं, एक 'परा' तथा दूसरी 'अपरा'। अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष आदि शामिल हैं। इनसे ब्रह्म दर्शन प्राप्त नहीं होता। परा विद्या वह है जिसके द्वारा अविनाशी, अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है, वह कमाई (अभ्यास) की चीज़ है।" वेद, शास्त्र, पुरान, तथा अन्य ग्रन्थ सब अपरा विद्या है। यह किताबी इल्म है जो इल्मे-सफ़ीना कहा जाता है। संतों का मत सीने का (आन्तरिक) इल्म है जो आत्मिक है और परा विद्या कहलाता है।

अपरा विद्या तथा उसका सामर्थ्य

ग्रन्थों-पोथियों में महात्माओं की रूहानी मण्डलों की यात्रा का वृत्तान्त और उनके निजी अनुभवों के उन प्रमाणों का उल्लेख है, जो उन्हें प्राप्त हुए और जिनको उन्होंने हमारे मार्ग-दर्शन के लिये पुस्तकों में लिखा। हमारे हृदय में उनके लिये आदर है। उन्हें पढ़कर हमारे अन्दर किसी हद तक परमार्थ का शौक तथा मालिक से मिलने का चाव उत्पन्न होता है। पुस्तकों का प्रयोजन केवल इतना ही है कि वे हमारे अन्दर, दिल की किताब खोलने की इच्छा पैदा करें। ग्रन्थों-पुस्तकों के द्वारा हम पिछले महात्माओं के परमार्थ के विचारों को जान लेते हैं तथा उनके अनुभवों से लाभ उठाकर और किसी मौजूदा महात्मा से राह लेकर उनके अनुभवों को अपने निजी अनुभव में लाने का प्रयास करते हैं।

इन वाणियों में वही वाणी अति उत्तम है जिसे मालिक किसी पूर्ण महात्मा के मुख से कहलाता है। उनके वचन, मालिक के वचन होते हैं, चाहे प्रकट रूप में वे मानवी-कण्ठ से निकलते हुए मालूम देते हैं। वे मन-बुद्धि के घाट पर (आसरे) नहीं कहते।

"गुप़्ताए ऊ गुप़्ताए अल्लाह् बवद ग़र्चे अज़ ह्लक़ूमे अब्दुल्ला बवद"
"जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो ।।"
(तिलंग म. १, ७२२-१५)

ये अनुभवी वचन परमार्थ के जिज्ञासुओं के लिये ह़ीरे-जवाह्रातों से कहीं मूल्यवान हें। इनके अतिरिक्त और सब वाणियाँ कच्ची हैं। ये ह्में केवल अन्दर जाने तथा स्वयं को और मालिक को पह्चानने का उपाय बताती हैं, किन्तु ये ह्में अन्दर नहीं ले जा सकतीं और न ही ह्मारी सुरत (आत्मा) को परिपूर्ण मालिक के साथ जोड़ सकती हैं। संसार इनके किताबी ज्ञान में उलझा रह्ता हैं और केवल इनकी टेक पकड़ कर जीव इन से बंधा रहता है। जब तक कोई पूर्ण महात्मा नहीं मिलता, छुटकारे का कोई उपाय नहीं बनता।

"तब ते जीव भयउ संसारी। छूटे न ग्रन्थि न होई सुखारी ।।
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूटे न अधिक अधिक उरझाई ।।"
(तुलसी-रामायण उत्तर काण्ड ११६-३)

मनुष्य सब से पुराना है। सब धर्म व धर्म-पुस्तकें बाद में बनीं। धर्म कई आये और कई गये, पर मनुष्य इनसे पहले से है। धर्म मनुष्य के लिये हैं, मनुष्य धर्मों के लिये नहीं। सब ग्रन्थ-पुस्तकें मनुष्य के अन्दर से आई हैं। पर असली भेद मनुष्य के अन्दर हैं। किताबों में उस भेद का उल्लेख है, स्वयं भेद नहीं। जब तक किसी महात्मा से मार्ग-दर्शन पाकर हम अन्दर नहीं जाते, उन भेदों को नहीं पा सकते।

मनुष्य ग्रन्थों-पोथियों को पढ़ता है तथा तत्व की बातों की व्याख्या करता है; पर स्वयं तत्व से वंचित रह जाता है।

"सिमृति सासत्र पड़हि पुराणा ।। वादु वखाणहि ततु न जाणा ।।
विणु गुर पूरे ततु न पाईऐ सचु सूचे सचु राहा हे ।।"
(मारू म. १, १०३२-१३)

मनुष्य चेतन है, पर पुस्तकें चेतन नहीं। इन्सान को ज्ञान है तथा उसे इस बात का पता है कि उसे ज्ञान है, पर पुस्तकों को इस बात का पता नहीं कि उन्हें ज्ञान नहीं है। मनुष्य आगे पीछे का विचार कर सकता है, पर वे विचार नहीं कर सकतीं।

जब तक हमें अपने अन्दर का पता नहीं, हम अविद्या में रह रहे हैं। किताबी ज्ञान सिर का भार हो जाता है। वह हमारे मन-बुद्धि के फैलने का कारण होता है। केवल वही विद्या हमारे संतोष का कारण हो सकती हैं जिससे हमें अपनी असलियत की जानकारी प्राप्त हो। जिसके अन्तर की

किताब खुल गई, उसे किसी बाहरी किताब की आवश्यकता नहीं। जो दिल मालिक की याद में फूल की भान्ति खिल कर महक उठता है, उसे बाहर की पुस्तकों की आवश्यकता नहीं रहती–

"सद कताब-ओ सद वरक दर नार कुन
दिल बयादे हक चूं गुलज़ार कुन"

उपनिषदों में कहा गया है कि आत्म-ज्ञान न वेदों, ग्रन्थों, पोथियों के पढ़ने से प्राप्त होता है और न उनके निरंतर श्रवण से, क्योंकि आत्मा का ज्ञान मन और विद्या के द्वारा नहीं हो सकता। यह कहने या सुनने का विषय नहीं, अनुभव का विषय है।

ऋग्वेद के पहले मण्डल में, १६४वीं सूक्त के ३९वें मंत्र में तथा श्वेताश्वतर उपनिषद् के चौथे अध्याय के आठवें श्लोक में कहा गया है, "जो मनुष्य उस अविनाशी परम आकाश (परमात्मा) को, जो ऋचाएं (सूक्तों) का तात्पर्य है तथा जिसमें सब देवता स्थित हैं, नहीं जानता, वह वेदों का क्या करेगा ? जो उसे जानते हैं वे ही शान्तिपूर्वक रहते हैं।"

चाहे मनुष्य चारों वेदों, अठारह पुराणों, नौ व्याकरणों और छहों शास्त्रों (दर्शन) को पढ़ ले, पर इन उक्तियों तथा युक्तियों में लग कर वह हक़ीक़त को खो देता है। जब तक हमारी सुरत मालिक-परिपूर्ण को नहीं पहचानती, हमारी गति चण्डूल पक्षी की भान्ति है, जो कोई भी बोली सुने उसी की नकल कर लेता है–

"चार अठारां नौ पढ़े, खट पढ़ खोया मूल।
सुरत शब्द चीन्हे बिना, ज्यों पंछी चण्डूल॥" (तुलसी साहिब)

विद्वत्ता की काट-छाँट शुष्क बुद्धि का फैलाव है जो सिर पर मुसीबतों का बोझ ही है। इन लम्बे-चौड़े हिसाबों को छोड़ कर हक़ीक़त की बारीकी को पकड़ो, जिसके द्वारा जीव का कल्याण होता है।

"किऊँ पढ़ना एँ गड्ड किताबाँ दी। सिर चाई आ भरी अजाबाँ दी॥
पढ़ नुकता छोड हिसाबाँ नूं। कर दूर कुफ़्र दियाँ बाबाँ नूं॥"
(बुल्लेशाह)

गुरुवाणी कहती है कि पढ़ने, लिखने और विचार करने को चाहे आयु-पर्यन्त, सालों-साल, स्वासों के अन्त तक, गाड़ियों की गाड़ियें भर कर किताबों का अध्ययन करते रहें व्यर्थ है। केवल एक ही बात मालिक को पहचानना, लेखे में आने वाली है, बाकी सब कुछ निरर्थक है। पढ़ाई के द्वारा काम-क्रोध आदि से छुटकारा नहीं होता–

"पड़ि पड़ि गडी लदीअहि, पढ़ि पढ़ि भरीअहि साथ ॥
पड़ी पड़ि बेड़ी पाईऐ, पड़ि पड़ि गडीअहि खात ॥
पड़ीअहि जेते बरस बरस, पढ़ीअहि जेते मास ॥
पड़िऐ जेती आरजा, पड़ीअहि जेते सास ॥
नानक लेखै इक गल, होरु हउमै झखना झाख ॥"

(आसा वार म. १, ४६७-१२)

"पाठु पड़िओ अरु वेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे ॥
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहं बुधि बाधे ॥"

(सोरठि म. ५, ६४१-१७)

हाफ़िज़ साहिब तो यहाँ तक फ़र्माते हैं कि जब तक तू इल्मों और बुद्धि के फैलाव में फँसा रहेगा, तू हक़ीक़त से नावाकिफ़ (अनभिज्ञ) रहेगा। तुझे एक ही नुक्ता (मूल बात) बताता हूं कि तू अपने आप से ऊपर उठ ताकि तू छुटकारा पा सके—

"ता फ़ज़ल-ओ इल्म बीनी बे मारफ़त नशीनी
यक़ नुक्ता अत बगोयम ख़ुद रा मबीं केह रस्ती"

किसी विषय पर ग़ौर-सहित विचार करने के उपरान्त उसकी प्राप्ति के लिये तन-मन से जुट जाओ। उपनिषदों में कथन है कि मन स्थिर हो, बुद्धि भी स्थिर हो, तब आत्मा का साक्षात्कार होता है। ज्ञान दिलवालों (पहुंचे हुओं) के गले में एक बहुमूल्य हार हैं, पर तन के पुजारियों के सर पर वह एक भार है।

"इल्म हाए अहले दिल हमाल शाँ
इल्म हाए अहले तन अहमाल शाँ"

बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है. "जो लोग अविद्या का सेवन करते हैं वे घोर अन्धकार में हैं; पर जो विद्या में रमे हुए हैं वे उनसे कहीं अधिक अन्धकार में हैं।"

इसीलिये संत-जन करनी के जीवन पर सब से अधिक ज़ोर देते हैं। उनके समीप केवल वाचक अथवा चंचु-ज्ञान का कोई मूल्य नहीं। सुनी-सुनाई अथवा किताबी ज्ञान की चर्चाएँ, व्यर्थ के भ्रम या धुआंधार लेक्चरबाज़ी में लगे रहने से परमार्थ की चाह नहीं उठती। पढ़ना, व्याख्यान देना, आदि केवल मिठाई की बातें ही बातें करना है; मिठाई खाना कुछ और बात है। यदि कोई व्यक्ति सौ साल तक भी 'हलवा', 'हलवा' पुकारता रहे अथवा उसके बनाने की सामग्री, शक्कर, घी, रवा आदि पदार्थों के मिलावट पर ही विचार करता रहे तो न उसे हलवे का स्वाद ही आता है और न कभी पेट

ही भरता है—

"हलवा-हलवा गर बगोई सद साल
अज़ गुफ़्तने हलवा नशवद शीरीं काम"

भाई गुरुदास जी भी इसी प्रकार फर्माते हैं—

"खांड खांड कहै जिह्वा न स्वाद मीठो आवै।
अगनि अगनि कहै सीत न बिनास है।।
वैद वैद कहै रोग मिटत न काहूं को।
द्रव्य द्रव्य कहै कोऊ द्रवहि न बिलास है।।
चन्दन चन्दन कहत प्रगटै न सुबास बास।
चन्द चन्द कहै उज्यारो न प्रगास है।।
तैसे ज्ञान गोष्ट कहत न रहित पावै।
करनी प्रधान भानु उदति आकास है।।" (कवित सवैये,४३७)

संतों की शिक्षा के तीन बुनियादी सिद्धान्त

परमार्थ की प्राप्ति में तीन वस्तुओं—सत्सङ्ग, सतगुरु और सतनाम अथवा शब्द की—आवश्यकता है।

१. सत्संग

'संत' का अर्थ है 'जाग्रत' और 'सङ्ग' का अर्थ है 'जुड़ना' अर्थात् जाग्रत या पहुँचे हुए पुरुष की सोहबत या संगति ही 'सत्सङ्ग' है। सतगुरु के अन्दर सत प्रकट है, उसकी संगति का नाम ही सत्संग है। जहाँ सतगुरु सत का उपदेश देता है, वहाँ जाने पर आत्मिक रंग चढ़ता है। जब जल के सरोवर के किनारे बैठने से शीतलता और अग्नि के पास बैठने से गर्मी आती है तो रूहानी बादशाहो के पास बैठने से उनका रंग क्यों नहीं चढ़ेगा ? मालिक के रहने का वास्तविक स्थान वह है जहाँ उसके प्रिय भक्त रहते हैं।

"मन मेरा पंछी भया, चढ़ कर उड़ा आकास।
स्वर्ग लोक खाली पड़ा, साहिब संतन पास।।" (कबीर)

"मिलि सत संगति खोजु दसाई विचि संगति हरि प्रभु वसै जीउ।।"
(माझ म. ४, ९४-१४)

सत्संग में केवल नाम का ही उपदेश होता है—

"सत संगति कैसी जाणीऐ।। जिथै एको नामु वखाणीऐ।।"
(सिरीरागु म. १, ७२-१)

सत्संग दो प्रकार का है, बाहरी और आन्तरिक। बाहर का सत्संग सतगुरु की सोहबत अथवा संगति है :—

"सतिगुर बाझहु संगति न होई ।।" (मारू म. ३, १०६८-१५)
"साधू बिनु नाही दरवार ।।" (गोंड कबीर, ८७२-१५)
सुरत का शब्द अथवा नाम के साथ लगना आन्तरिक सत्संग है।

२. सतगुरु

संत सतगुरु मालिक का नर-रूप अवतार है जिसके अन्दर सत्य प्रकट है और जो सत्य से अभिन्न है। उसके अन्दर सत्य रम रहा है। वह मालिक से मिल कर जी उठा है। वह पवित्र हस्ती है, उसमें सत्य स्वयं देहधारी है। वह ज्ञान का पुंज तथा भक्ति का स्रोत है। वह जीवों को सच्चे पथ का पथिक बना कर धुर-धाम तक पहुँचाने का सामर्थ्य रखता है। वह मानव-ईश्वर है। ग्रन्थ-पोथियाँ हमें सत्य की छाया भी नहीं दे सकतीं। आत्म विद्या सिखाई नहीं जा सकती, वह एक स्पर्श की भान्ति महसूस की जा सकती है। जागृत कौन है ? गुरुवाणी बताती है, केवल वही जागृत हैं जिसके अन्दर मालिक बस गया हो।

"सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ ।। नानक अवरु न जीवै कोइ ।।"
(माझ वार म. १, १४२-९)

वह परमात्मा + मनुष्य है। वह परमात्मा के बोलने अथवा प्रकट होने का माध्यम है। उसके वचन प्रभु के वचन होते हैं–

"प्रभ जी बसहि साध की रसना ।।" (गौड़ी सुखमनी म. ५, २६३-४)

चाहे देखने में वे मानवी-कण्ठ से निकलते प्रतीत होते हैं–

"गुफ़्ताए ऊ गुफ़्ताए अल्लाह बवद
गरचे अज़ हलक़ूमे-अब्दुल्ला बवद"

पर उनके उपदेश-मात्र से ही लोगों को रूहानी लाभ नहीं पहुँचता; बल्कि उनकी संगति से पहुँचता है जो कि आत्मिक-जीवन देने वाली, जागृति पैदा करने वाली और आत्म-रस को प्रदान करने वाली है। उनकी संगति में रहना रूहानी ख़मीर या आत्मिक रस को पाना है। उनकी प्रसन्नता तन, मन तथा आत्मा को प्रफुल्लित करने वालीं होती है। वे अपनी एक दृष्टि, एक स्पर्श, वाणी या तवज्जह के द्वारा हमारे अन्दर आत्मिक आनन्द पैदा कर सकते हैं। वे शिष्य को आत्मिक-जीवन की सम्पत्ति नकद रूप में दे सकते हैं। वे आत्मिक-जीवन के लिए रोटी और पानी की भान्ति है जिसे खाकर और पीकर शिष्य सन्तुष्ट और तृप्त होता हैं। पर यह भोजन कोई भूखा-प्यासा ही ले सकता है। सतगुरु आत्म-ज्ञान का सरोवर हैं, जिसमें से शिष्य अपने बर्तन या घड़े की सीमा अथवा ग्रहण-शक्ति के अनुसार रस ले सकता है।

गुरु आदर्श पुरुष है। उसका शरीर वह द्वार है जिस पर बैठ कर

परमेश्वर अपना कार्य करता है गुरु पूरा हो तभी परमार्थी का काम बनता है। अन्धे या अधूरे गुरु से परमार्थ की प्राप्ति नहीं होती।

"जाँका गुरू हैं आँधरा, चेला कहा कराई।
अंधे अंधा ठेलिया, दोऊ कूप पराई॥" (कबीर)

"गुरू जिना का अंधुला, चेले नाही ठाउ॥
बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ बिनु नावै किआ सुआउ॥
(सिरीरागु म. १, ५८-३)

३. सतनाम

सतनाम सच्चे मालिक का नाम है जो खण्डों-ब्रह्मण्डों का सहारा है और जो हरएक के अन्दर धुनकारें दे रहा है। वह धुनात्मक नाम है, उसकी धुन घट-घट में हो रही है, जो मालिक से मिलने की राह है। कबीर साहिब फ़र्माते हैं, "राम नाम निज सार है, उसके अतिरिक्त सब फ़ना है, इसलिए उस राम का सुमिरन करो। काल सिर पर है, पता नही किस समय आ पकड़े।" इस राम से उनका तात्पर्य 'राम अवतार' से नहीं है। वह नाम या शब्द सबके अन्दर अपने आप हो रहा है, पर उसे कोई बिरला मनुष्य ही जानता है। उसके लिये जिह्वा या मुख हिलाने की आवश्यकता नहीं, वह गुप्त एवं आन्तरिक है।

"राम नाम है निज सार॥ अवर सब झूठ सकल संसार॥"
"सिमरन करहु सो राम को, काल गहे हैं केस॥
न जानूं कब मारसी किआ घर किआ परदेस॥" (कबीर)
"सो जाने जेही मैं ही जानऊँ॥ बाँहि पकड़ लैके लै आऊँ॥
सहज जाप धुनि आपे होई॥ संधी बूझे बिरला कोई॥"
"रग रग बोले राम जी रोम रोम राकार॥
सहजे धुनि लागी रहे सोई सिमरन सार॥
ओठ, कंठ, हाले नही, जीभा नहीं उचार॥
गुपत बस्तु को जो लखे, सोई हँस हमार॥
"रमत राम जनम मरणु निवारै॥ उचरत राम भै पारि उतारै॥"
(गोंड म. ५, ८६५-७)

संतों की शिक्षा के तीन साधन

मनुष्य तीन वस्तुओं का मेल है। पहला स्थूल पदार्थ, जिससे शरीर बना है, दूसरा सूक्ष्म पदार्थ, जिससे मन की रचना हुई है और तीसरी आत्मा, जो मनुष्य की जान है तथा शरीर और मन दोनों का आधार है। पहिली दोनों

वस्तुएँ नाशवान हैं। तीसरी वस्तु, आत्मा अमर है, नश्वरता की सीमाओं से परे हैं। जिस प्रकार इस शरीर को जीवन देने वाली आत्मा है उसी प्रकार सारे संसार को सत्ता देने वाला परमात्मा है।

"इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ॥"

(आसा वार म. २, ४६३-१३)

आत्मा और परमात्मा का परस्पर अंश-अंशी भाव है। इन दोनों का जौहर एक ही है। इसलिये जो ब्रह्माण्ड है उसका नमूना ही पिण्ड है।

"जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै ॥"

(धनासरी पीपा, ६९५-१५)

जो ब्रहमंडि खंडि सो जाणहु ॥ गुरमुखि बूझहु सबदि पछाणहु ॥"

(मारू म. १, १०४१-११)

मुसलमान फ़कीर भी आलमे सग़ीर (छोटा लोक अथवा पिंड) को आलमे कबीर (महान् लोक अथवा ब्रह्माण्ड) का नमूना बता कर वर्णन करते हैं।

शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक तौर पर पूर्णता-प्राप्ति के लिये यत्न करना मनुष्य का मुख्य ध्येय है। इसके लिये कुछ तो अपनी निजी योग्यता और कुछ बाहरी सहायता से हम लाभ उठाते हैं। फ़लदार वृक्षों की ओर दृष्टि डालो। उनमें साधारणतया चार-पाँच साल में फल लगते हैं, किन्तु वैज्ञानिक खुराक देने से वही पेड़ दो-तीन साल में फल दे देता है। यदि जड़ पदार्थ बाहरी सहायता से जल्दी फल दे सकते हैं, तो मनुष्य भी, जो चेतन है, किसी समर्थ पुरुष से सहायता लेकर अपने आदर्श की प्राप्ति में शीघ्र सफल हो सकता है। एतएव संत-जन ज़ोर देते हैं किसी ऐसे रूहानी पुरुष की सेवा में जाओ जो रूहानी जीवन की केवल बौद्धिक जानकारी ही न रखता हो, बल्कि जिसने स्वयं भी आत्मिक-जीवन व्यतीत करके अपनी आत्मा का परमात्मा से मिलाप किया हो।

भोजन, जीवन के उपकरण (सामान) और आस-पास के वातावरण का शरीर और मन पर बहुत अधिक असर पड़ता है। इसलिये सात्विक भोजन, संसार के सामान का केवल निर्वाह-मात्र के लिये उपयोग और तवज्जह अथवा ध्यान को व्यर्थ न फैलने देने की चेतावनी दी जाती है। जो परमार्थी इन संयमों को धारण करता है, उसे ऐसे साधन सिखाये जाते हैं जिनके अभ्यास से वह आध्यात्मिक बनता जाता है। ये साधन तीन हैं—(१) सुमिरन (२) ध्यान और (३) धुन अथवा शब्द अभ्यास।

हमारा मन बाहरी संसार में, साँसारिक सुमिरन और ध्यान में रमा हुआ है। जब कभी भी हम मन को अन्तर्मुख करने का प्रयास करते हैं तो मित्र-

मंडली,घर-बार आदि की याद तथा उनका ध्यान हमारे सामने आकर विघ्न उपस्थित करते हैं। उनसे ख़्याल को हटाने और मालिक के साथ जोड़ने के जिज्ञासुओं को मालिक के मनभाए नामों के सुमिरन और रूपों के ध्यान का साधन करना पड़ता है। संत-जन आत्मा की जिह्वा द्वारा सुमिरन और आत्मा के नेत्रों द्वारा ध्यान करना सिखाते हैं। मालिक के कौन-से नामों का सुमिरन और कौन-से रूपों का ध्यान किया जाये, इसके विस्तार के लिये सुमिरन और ध्यान के प्रकरण ',गुरुमत सिद्धान्त" में ध्यान से पढ़ें। इन दोनों साधनों द्वारा मन कुछ-कुछ खड़ा होने लग जाता है। फिर आत्मा के कानों से शब्द अथवा धुन को सुनना पड़ता है। यह रूहानी आवाज़ हरएक मनुष्य के अन्दर, चाहे वह किसी जाति या धर्म का हो, हर समय हो रही है। इस साधन से मन बिल्कुल स्थिर हो जाता है। दोनों का एक ही चेतन द्रव्य का होने के कारण, आत्मा और इस शब्द की धारा में परस्पर समानता है। मालिक रूपी सागर की शब्द-धुन रूपी लहरें आत्मा-रूपी बूँद को अपने अन्दर खींच कर लीन कर लेती हैं। आत्मा के लवलीन होने से मन, जो कि आत्मा से ही जीवन पा रहा है, सत्ता नहीं पा सकता, इसके फलस्वरूप यह पूर्णतया स्थिर हो जाता है। ये तीनों युक्तियाँ अथवा साधन, सतगुरु नाम का उपदेश देते समय जिज्ञासु को विस्तार-पूर्वक समझा देता है।

फैली हुई आत्मा, ध्यान द्वारा सिमिट कर आँखों के पीछे अपने स्थान पर आ जाती है। फिर वह शब्द-धुन के आसरे दर्जे-ब-दर्जे उन्नति करती हुई अपने निज मुकाम में जो अशब्द है, जहां से इस शब्द-धुन का उद्‌गम (निकास) है, जा समाती है तथा सच्ची मुक्ति प्राप्त कर लेती है।

गुरुमत सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना का प्रयोजन तथा आवश्यकता

इस ग्रन्थ में परमार्थ के अटल सत्यों का उल्लेख है, किसी एक अथवा दूसरे धर्म के सिद्धान्तों का विवाद नहीं। इसमें उन वृत्तान्तों और सचाइओं का वर्णन है जो संतों-महात्माओं के निज-अनुभव में आई हैं तथा अब भी आ सकती हैं। जिन शिष्यों ने उनकी शिक्षा को धारण किया उन्हें भी वे ही अनुभव हुए तथा वे भी उन्हीं नतीजों पर पहुँचे। संतों की यह शिक्षा यथार्थ सत्य है। इसका अनुभव उसी प्रकार हो सकता है जिस प्रकार विज्ञान का अनुभव होता है। यह संतों का एक ऐसा विज्ञान (साइंस) है जो मनुष्य को अपने मालिक के साथ जोड़ता है और लोक-परलोक की कठिनाइयों को हल करता है।

'गुरुमत सिद्धान्त' में सांसारिक विद्या, नियम अथवा धर्म-नीति की

अधिक चर्चा नहीं की गई है; क्योंकि इन विषयों पर आगे अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। इसमें केवल आत्मा, परमात्मा तथा आध्यात्मिक जीवन का वर्णन है। यह ग्रन्थ उन लोगों के लिये है जिन्हें अपनी आत्मा की उन्नति का ध्यान है तथा मालिक से मिलने की सच्ची तड़प है। रूहानी जीवन लिखने-पढ़ने का विषय नहीं, वह तो निजी अनुभव में आने वाली वस्तु है। ईश्वर का निजी अनुभव, धर्मों, ग्रन्थों, नीति-शास्त्रों आदि सबसे ऊँची चीज़ है। वह सब जप-तप, पूजा-पाठ, गाने-बजाने का सार है, पर इन सबसे अलग एक निजी अनुभव की चीज़ भी है।

गुरु ग्रन्थ साहिब में शब्दों का ब्योरा रागों के अनुसार है, पर इस खज़ाने में एक विषय (वह क्या है, कहाँ है, किस प्रकार प्राप्त होता है, उसके कौन-से अनेक फल हैं, आदि) का किसी एक स्थान पर इकट्ठा विचार न होने से गुरु-मत के सिद्धान्त भलीं प्रकार समझ में नहीं आते।

गुरु ग्रन्थ साहिब अनमोल वचनों और उपदेशों का अद्भुत संग्रह है। इसमें शुभ दैवी गुणों और परमार्थ के उन भेदों की चर्चा है जिनका गुरु साहिबों तथा अन्य महापुरुषों ने अनुभव किया है। यह मानो अनमोल रत्नों से परिपूर्ण सागर है, जो भी व्यक्ति वाणी को इस गुरुवाणी के अदेशानुसार ग्रहण करते हैं, उन्हें वे रत्न हाथ लग जाते हैं—

"रतना रतन पदारथ बहु सागरु भरिआ राम ॥
बाणी गुरबाणी लागे तिन्ह हथि चड़िआ राम ॥"

(आसा म. ४, ४४२-१६)

भाई गुरदास जी फ़र्माते हैं, जिस प्रकार सकल द्रव्य से भरपूर समुद्र में हंस को मोती मिलते हैं उसी प्रकार गुरुवाणी में सकल पदार्थ हैं। पर जो कोई उसमें खोजता है उसे ही कुछ प्राप्ति होती है—

"जैसे तो सकल निधि पूरन समुद्र बिखै,
हंस मरजीवा निसचै प्रसाद पावई ॥
तैसे गुरबाणी बिखै सगल पदार्थ हैं,
जोई जोई खोजै सोई सोई निपजावई ॥" (कबित्त, ५४६)

पर इस अनमोल गुरुवाणी के रत्नों का भेद नाम के विज्ञान के किसी पूर्ण ज्ञाता के बगैर मिलना अति कठिन है। आज तक, इस प्रयोजन की सिद्धी के लिये, कई सज्जनों ने ग्रन्थ लिखे। उनसे संगत को लाभ पहुँचा है, पर फिर भी वे आजकल के साइंटिफिक माइंड (वैज्ञानिक मनोवृत्ति अथवा विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार विचार करने वाले दिमाग) के अनुसार नहीं

हैं, क्योंकि उनमें वाणी की खोल कर व्याख्या नहीं की गई है। आवश्यकता यह थी कि गुरु ग्रन्थ साहिब में ख़ास-ख़ास विषयों पर आये अनमोल विचारों को ठीक रीति से सिलसिलेवार दुनिया के आगे रखा जाता। उदाहरणार्थ, सब कोई जानतें हैं कि नाम जपना अच्छी बात है, पर यह समझना आवश्यक है कि 'नाम' क्या वस्तु है, नाम का जपना क्या है, यह किस प्रकार जपा जाता हैं, यह कहाँ है, इसकी प्राप्ति कहाँ से हो सकती है, बाहर के अनेक नामों का महत्व क्या है, इसे क्यों जपा जाये, इसके जपने के क्या फल हैं, इत्यादि। इसी प्रकार और अनेक पदों का गुरुवाणी में प्रयोग हुआ है, यथा, शब्द, अनहद शब्द, पंच-शब्द, वाणी, गुरुवाणी, कीर्तन, ज्ञान, अमृत, गुरु, गुरुदेव, सतगुरु, स्वामी, हरिराय, एकंकार, रामराय. काल, धर्मराय आदि। इस ग्रन्थ में लगभग सवा-सौ भिन्न-भिन्न विषयों पर वचन एकत्र करके गुरुवाणी के अनमोल विचारों को क्रमपूर्वक एकत्रित करने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक शीर्षक के पहले उस विषय पर पूर्ण विचार करके प्रस्तावना दी गई है, जिसमें गुरुवाणी के गूढ़-भाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही और-और धर्मों तथा देशों के महात्मा पुरुषों के इन विषयों पर विचार प्रौढ़ता के लिए दिये गये हैं ताकि यह स्पष्ट हो जाये कि संत-मत किसी विशेष जाति या धर्म का एकाधिकार नहीं, बल्कि सब मनुष्यों की समान रूप से सम्पत्ति है और सब महात्मा-जनों को मालिक से मिलाप का जो अनुभव हुआ है वह सबके लिये समान और मिलता-जुलता है। परमात्मा एक है, इन्सान भी सब एक हैं। उनके एक से अधिकार हैं। उनके अन्दर मालिक ने एक-सी ही सामग्री रखी है। अतएव, मालिक से मिलने का मार्ग भी एक ही हो सकता है। यह मार्ग नाम, शब्द, वाणी, श्रुति, कलमा या वर्ड का है। यह सुरत-शब्द योग का मार्ग है। यह मार्ग सबके अन्दर है, किन्तु गुप्त है। इसकी प्राप्ति के लिये गुरुमत और पूर्ण अभ्यास की आवश्यकता है। रूहानियत की रोटी या पानी केवल शब्द या नाम है, जिसकी प्राप्ति द्वारा सब आँतरिक भूख-प्यास मिट सकती है। इस ग्रन्थ में इनकी भली प्रकार खोल कर व्याख्या की गई है। यह ग्रन्थ गुरुमत में अपने ढङ्ग का निराला और अनोखा है, जो सत्य के खोजियों, नाम के रसिकों, गुणी-ज्ञानियों और प्रचारकों के लिये बड़ा लाभदायक सिद्ध होगा।

जो बुद्धि के मैदान में आ गये वे प्रत्येक वस्तु के बारे में 'यह क्या है, यह क्यों है तथा किस तरह है' समझना चाहते हैं। उनको समझाने के लिये यह एक प्रयास है, नहीं तो वह तथ्य अथवा हकीकत तो अवर्णनीय है, उसकी केवल अनुभव ही हो सकता हैं। वह मन-बुद्धि का विषय नहीं, वह तो किसी

ऐसी हस्ती की संगति से ही मिल सकता है, जिसमें, कि वह स्वयं प्रकट हो। यदि इसी बात को दो अक्षरों में कहें तो 'गुरु' और 'नाम' को पकड़ लो, सब-कुछ प्राप्त हो जायेगा। यदि एक बात में हक़ीक़त को समझना चाहते हो तो किसी सच्चे, कमाई वाले महात्मा के पास जाओ तथा जिस मार्ग पर वह चलाये, चल पड़ो। पर यदि बहुत बातों में समझना चाहो तो किसी आलिम बा अमल (व्यवहारिक तथा पहुँचे हुए विद्वान्) के पास जाओ।

यदि पूर्ण महात्मा मिल जायें तो किसी ग्रन्थ-पोथी की आवश्यकता नहीं रहती। वे उस मनुष्य-रूपी पुस्तक को पढ़ाते हैं जो असली वेद हैं, जिसमें से सब धर्म-शास्त्र प्रकट हुए हैं। यह शरीर सच्चा हरिमन्दिर है जिसमें मालिक निवास करता है। यदि तुमने इस काया को खोज लिया तो तुम स्वयं देहधारी ज्ञान-ध्यान बन जाओगे और ईश्वर को पा लोगे।

गुरुमत सिद्धान्त ग्रन्थ में क्या है ?

यह ग्रन्थ बार-बार विचार करने योग्य है। इसके दो भाग हैं। पहले भाग में परमात्मा, नाम और गुरु पर विचार है। इन विषयों पर गुरु-ग्रन्थ साहिब की वाणी एकत्रित की गई है तथा उसकी भली प्रकार व्याख्या की गई है।

क्या वास्तव में कोई परमेश्वर है? वह दयाल है अथवा काल है? परमेश्वर कहां है, वह शक्ति एक है अथवा अनेक? वह ताकत चेतन हैं या जड़? मालिक क्या है और हमारा उसके साथ क्या सम्बन्ध है? उसकी हैसियत को संत किस प्रकार मानते हैं? क्या हम उसे अनुभव द्वारा जान सकते हैं? वह मालिक, सब का स्वामी, कहाँ है, उससे मिलाप किस प्रकार होता है, उसके दर्शन तथा सुमिरन के फल तथा उसके अनेकों गुणों का वर्णन गुरुवाणी के आधार पर किया गया है।

संतों की शिक्षा न द्वैतवाद है, न अद्वैतवाद। सब कहते हैं कि मालिक एक है, तो उससे परे और क्या रह जाता है जो हमारा आदर्श हो सके। संत तौहीद (एकेश्वरवाद) का सिद्धान्त सबसे बड़ा और कामिल (पूर्ण) है। संत इससे एक कदम और आगे जाते हैं। जहाँ एक का ख्याल है वहाँ दो का ख्याल छिपा रहता है, इसलिये ब्रह्म (बढ़ा हुआ) एक होते हुए भी माया से अलग नहीं। सच्चा मालिक या स्वामी न एक है, न दो, न तीन, वह जो है सो है।

और किसी प्रकार हम उसका वर्णन नहीं कर सकते।...

"एक कहूं तो है नहीं, दूजा कहूं तो गार ।।
जैसा है तैसो रहे, कहे कबीर बिचार ।।"

हम एक कह कर भी उसका सीमित करके वर्णन कर रहे हैं। पर यह समझने के लिये है, ताकि कोई आधार हो सके, नहीं तो वह हस्ती अकथ और निराली है–

"हरि बिअंतु हउ मिति करि वरनउ किआ जाना होइ कैसी रे ।।"

(सोरठि म. ५, ६१२-६)

संतों के उपदेश तो उस एक के भेद को जानने के लिये हैं जो अनन्त हैं–

"इसु एके का जाणै भेउ ।। आपे करता आपे देउ ।।"

(रामकली म. १, ९३०-१८)

वह मालिक न तो काल है और न अकाल है, वह तो काल अकाल दोनों का स्वामी है–

"कालु अकालु खसम का कीना इहु परपंचु बधावनु ।।"

(मारू कबीर, ११०४-७)

वे तो जगत के प्रपंच को बढ़ाने के लिए रचे गये हैं।

गुरुवाणी और अन्य संतों की वांणियों के गहरे मनन से सिद्ध होता है कि वह मालिक अकथ और निराला है, सैभं' या स्वयम्भू है, वह सब-कुछ अपने आप में है, उसका "हैरत हैरत होई" या "विस्माद" (विस्मय) कह कर वर्णन किया है। उसे संतों ने स्वामी, हरिराय, आदि निरंजन, महा-दयाल आदि कहा है। उससे जब ज़हूर (रचना के प्रकट होने की क्रिया) हुआ तो उस स्वामी ने "एकंकार" होकर दुनिया का पसारा फैलाया–

"जलि थलि महीअलि पूरिआ सुआमी सिरजनहारु ।।
अनिक भाँति होइ पसरिआ नानक एकंकारु ।।"

(गउड़ी म. ५, २९६-१२)

इस अवस्था का संतों ने, सत्पुरुष 'एकंकार' रामराय या दयाल कह कर वर्णन किया है। इसके नीचे के खण्डों-ब्रह्माण्डों की रचना काल-पुरुष द्वारा हुई है।

इन रामराय आदि नामों का विवरण इस प्रकार है–

हरिराय–स्वामी।

रामराय–एकंकार।

धर्मराय–काल।

इस ग्रन्थ में इन शीर्षकों के अन्तर्गत इन नामों पर गुरुवाणी के आधार

पर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। 'भाणा' 'शरण' (जो मालिक को भाए उसे स्वीकार करना) किसे कहते हैं, 'हुकम' क्या है और उनके आपसी सम्बन्ध का निर्णय किया गया है।

स्वामी शब्द रूप है जो सारे जहानों का कर्त्ता है और सबका प्राण है। शब्द क्या है, शब्द के अंदर ध्वनि अथवा धुन है, इसका वास कहाँ है, वह कौन सा स्थान है जहाँ वह सुनाई देता है, इसके अन्दर प्रकाश है, यह किस को प्राप्त होता है, कैसे मिलता है, यह अन्तर्मुख क्या करता है, शब्द की कमाई के फल, अनहद शब्द और पंच शब्द क्या हैं, आन्तिरिक और बाहरी बाजे और नृत्यकारी क्या है, नाम और नामी की आवश्यकता, मालिक के अनेकों नामों में से कौन-सा नाम पूर्ण कल्याणकारी है, नाम क्या है तथा उसकी असलियत, इसमें धुन और प्रकाश है, असली नाम गुप्त है, नाम मालिक से मिलने की डोर है, वह कहाँ है और किस प्रकार मिलता है, चारों युगों में नाम द्वारा ही उद्धार है, नाम का साधन सरल है, इसकी प्राप्ति कैसे होती है, इसके सुनने और मानने के अनेकों फल, आदि का स्पष्ट वर्णन किया गया है।

हरिनाम, रामनाम, हरिराय, गुरुनाम अथवा गुरुमुख-नाम की भी स्पष्ट व्याख्या है। अमृत क्या है, कहाँ है, कैसे तथा किसे मिल सकता है और उसके फलों का वर्णन किया गया है। वाणी और गुरुवाणी के विषय पर गुरुवाणी के सम्पूर्ण विचार भी इस ग्रंथ में दिये गये हैं—कि यह गुरुवाणी एक ओर वाणी की ओर संकेत करती है जो वेदों शास्त्रों और तीनों लोकों का निर्माण करने वाली है तथा सारे जगत की गुरु है। वह नाम और शब्द ही है जो युगों से चला आ रहा हैं। उसे गुरुमुख वाणी, अनहद वाणी, 'रूड़ी' (श्रेष्ठ) वाणी, अघड़ वाणी और गुप्त वाणी कहा गया है। उसके अनेक फल हैं।

गुरुमंत्र और दीक्षा क्या है तथा उसकी प्राप्ति की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। गुरुवाणी अक्षर और ज्ञान किसे कहती है। चरण-कमलों और चरण-धूलि का सविस्तार वर्णन किया गया है। वे चरण कौन से हैं जिनके साथ हमें जुड़ना है तथा जिन्हें हृदय में धारण करके मनवाँछित फल पाना है। वह चरण-धूलि कौन-सी है जिसका गुरुवाणी संकेत करती है। सुरत-शब्द क्या है, इसका साधन किस प्रकार होता है? सबका संक्षेप में विवरण दिया गया है।

मालिक और नाम या शब्द और सुरत-शब्द-योग का साधन गुरु से

प्राप्त होता है ? गुरु क्या है और कौन है, गुरु के दरजे, गुरु एक है या अनेक, वक्त गुरु किसे कहते हैं, प्रत्यक्ष-गुरु की आवश्यकता और पुरातन गुरुओं के कार्य आदि की व्याख्या है। गुरु सदा से आते रहे तथा आते रहेंगे, इसका ऐतिहासिक प्रमाण, गुरु-पद का अधिकार मालिक से मिलता है, वह जीवों की मुक्ति के लिए आता है। गुरु का संसार में आने का मंतव्य, गुरु का कार्य, गुरु का कर्तव्य, गुरु मालिक का विशेष ज़हूर (प्रकाश) है, गुरु के लक्षण क्या-क्या हैं, उसकी प्राप्ति किस प्रकार होती है, उसकी प्राप्ति के फल, सबकी विस्तार पूर्वक व्याख्या इस ग्रंथ में की गई है।

गुरु, गुरुदेव और सतगुरु का भिन्न-भिन्न ब्योरा दिया गया है। जीव का कल्याण पूरे गुरु से ही हो सकता है। उस पूरे गुरु की पहचान, गुरुदेव और सतगुरु की मालिक से एकता, गुरु की शरण, हरि और गुरु की बख़शिश, गुरु का मस्तक पर दया का हाथ, गुरु-वचन, गुरु की संभाल, इन विषयों पर गुरुवाणी के विचार के साथ-साथ ही पाखण्डी गुरुओं के ढोल का पोल खोल कर बताया गया हैं ताकि भूले भटके जीव धोखा न खायें।

ग्रन्थ गुरुमत सिद्धान्त के दूसरें भाग में क्या है ?

दूसरे भाग में परमार्थ के मुख्य साधनों का वर्णन किया गया है। कौन-सी सेवा सबसे उत्तम है, निष्कर्मता, धुर-कर्म, सुमिरन, ध्यान, धुन, आसन, अमृत-वेला की महानता का वर्णन किया गया है और उन साधनों पर प्रकाश डाला गया है जिनसे भजन-सुमिरन का विकास होता है। वैराग्य, जप-तप पूजा, भय और भाव (प्रेम) क्या हैं तथा कैसे बन सकते हैं, जगत की असारता पर चेतावनी, वे गुण जिनको ग्रहण करने से मालिक के दर पर रूह शोभा पाती है तथा विनती और नम्रता के गुणों पर जो परमार्थ में सहायक हैं गुरुवाणी के विचार दिये गये हैं।

शिष्य, अधिकारी, गुरुमुख, सुहागिन, जीवन-मुक्त, साध-संत, ज्ञानी, जीवित-मृतक, अपरस आदि पर गुरुवाणी तथा अन्य महात्माओं के विचार दिये गये हैं।

आन्तरिक रूहानी दृश्यों, ज्योति आदि अन्दर के स्थान, तिल, अमृतसर और सहज आदि, जिनका आत्मा अपने अन्दर अनुभव करती है, कुछ-कुछ वर्णन किया गया है। जीवात्मा क्या है, काया उसके रहने का घर है, सच्चा हरि-मन्दिर तथा सच्ची मस्जिद कौन-सी है जिसमें कि परमात्मा मिलता है, और इस काया में प्रवेश करने पर जो-जो वस्तुएँ प्राप्त होती हैं उनका वर्णन किया गया है।

परमार्थ में कौन-कौन सी रुकावटें हैं, मन,मनमुख, दुहागिन, और मनमत कर्म क्या हैं ? माया, भ्रम, हौमै (अहं), पंच दोष, (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार), निन्दा आदि क्या हैं और किस प्रकार दूर हो सकते हैं, शराब, माँस, निद्रा, कुसंगति, दुविधा, हठ, वाद-विवाद, रसना का स्वाद, आशा, मनसा, भेष, जाति-पाति, सूतक आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

गुरुमत में अवतारों और देवताओं का जो पद है, गुरुवाणी द्वारा उसका निर्णय किया गया है। वेदों, शास्त्रों तथा स्मृतियों को गुरु साहिबान और अन्य संत-जन जिस दृष्टि से देखते हैं उसे गुरु-मुखवाक्य वाणी द्वारा बताया गया है।

गुरुवाणी में सती, सूरमा, सज्जन, मुसलमान किसे कहा गया है तथा मूर्ति-पूजा और ज्योतिष की असलियत को स्पष्ट कर दिया है। सच्चे तीर्थ, पाठ, नरकों के दुःख, रोज़ी कमाने की आवश्यकता और प्राप्ति पर भी विचार किया गया है। ग्रन्थ के अन्त में प्रश्नोत्तर तथा ख़ास-ख़ास विषयों पर गुरु का उपदेश भी सम्मिलित किया गया है।

अन्तिम निवेदन

परमात्मा को सन्तों ने देखा है। वे इस बात को स्वीकार करते हैं–

"नानक का पतिसाहु दिसै जाहरा ॥"

(आसा म. ५, ३९७-७)

यह शरीर हरि का मन्दिर है, हम भी गुरुमुख बन कर, इसके अन्दर जाकर उस परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं–

"अदिसट अगोचरु अलख निरंजन सो देखिआ गुरमुखि आखी ॥"

(सिरीराग वार म. ४, ८७-१९)

संतों की शिक्षा स्वयं अपना प्रमाण है, उसके लिये किसी साक्षी (गवाही) की आवश्यकता नहीं। सूर्य स्वयं अपना प्रकट प्रकाश है, उसके लिये कोई और प्रमाण देना उसे मोमबत्ती जैसी अपूर्ण वस्तु द्वारा प्रमाणित करना है। सब संतों के प्रत्येक विषय पर एक से ही विचार हैं, जिन्हें इस ग्रन्थ में दिया गया है।

धर्म चाहे कोई भी हो, उनके रूहानी बादशाह अपने सम्मुख केवल रूहानी रिश्ता रखते हैं और मनुष्य के भ्रातृ-भाव का तथा मालिक के सबके पिता होने का दृढ़ उपदेश देते हैं। वे नामों के भेद, धार्मिक वैर और जाति-सम्बन्धी विद्वेषों से ऊपर रहते हैं।

"गुरुमत सिद्धान्त" में दो बातें हैं। एक तो यह सच्चे परमार्थ का क्रम-बद्ध भण्डार है; इसमें हक़ीक़त के भेद की कुञ्जी का पता दिया गया है। दूसरे, इसमें उन विषयों और सिद्धान्तों का वर्णन है जिनकी शिक्षा परमार्थ के सच्चे जिज्ञासुओं के लिये आवश्यक है।

यह ग्रन्थ आजकल की प्रचलित सरल हिन्दी भाषा में लिखा गया है जिसमें अनेक बोलियों और भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है, ताकि वे सबकी समझ में आ सकें।

प्राचीन ऋषियों मुनियों का आदर्श-वाक्य था, "जागो उठो. परमार्थ के मार्ग पर बढ़ो और जब तक अपने असली ठिकाने पर न पहुँच जाओ, विश्राम न लो।" संतों का मत नकद सौदा करता है, उधार नहीं। यदि जीव को जीते-जी अभ्यास द्वारा अपने अन्दर मालिक के दर्शन न हों तो मरने के बाद मुक्ति मिलने या मालिक की प्राप्ति का क्या भरोसा है—

"मूए हूए जउ मुकति देहुगे मुकति न जाने कोइला ।।"

(मलार नामदेव, १२९२-१७)

सच्ची भक्ति और वाहिगुरु (परमेश्वर) की प्राप्ति इसी जन्म में हो सकती है। इसीलिये संत-जन फ़र्माते हैं, 'आओ, अभ्यास करके उस मालिक का अपने अन्दर अनुभव करो, ज़बानी जमा-खर्च में न रहो, प्रयास करो और इसी जन्म में अपनी आँखों से हक़ीक़त को देखो।"

संतों का आदर्श-वाक्य है, "अब ही करो, फिर का भरोसा न रखो।" जो अभी नहीं करते, आज का काम क़ल पर छोड़ देते हैं, वे कभी नहीं कर पाते। समय की क़दर करो, समय के सागर की लहरें किसी की प्रतीक्षा नहीं करतीं।

अन्तिम विनती है कि पाठक-जन इस पुस्तक का प्रेम-पूर्वक अध्ययन करें, गुरुवाणी के आदेशानुसार अपने वास्तविक घर जाने का उपाय करें और अपनी अनमोल नर देही को, जो चौरासी लाख योनियों में सर्वश्रेष्ठ है, सफल करें।

दासनदास

सावन सिंह

GURUMAT SAAR

VOL. I

Radha Swami Satsang, Beas